TRANSFRAME

A BILINGUAL BIMONTHLY E-MAGAZINE ON TRANSLATION AND CINEMA

VOLUME 1, ISSUE 3
JANUARY-FABRUARY 2016
ISSN 2455-0310

Volume 1, Issue 3

January-February 2016

TRANSFRAME

ISSN 2455-0310

इस अंक में ....

अध्ययन

- तकनीकी की रंगबिरंगी दुनिया अभिषेक त्रिपाठी 4
- मराठी से अनूदित ‘जूझ’ उपन्यास का हिंदी अनुवादपरक अध्ययन नेव्हल अमोल अप्पासाहेब 8

व्यक्तित्व

- अल्फ्रेड हिचकॉक- प्रवीण सिंह चौहान 14
- दिलीप पुरुषोत्तम चित्रे – मेघा आचार्य 18

समीक्षा

- 'भंसाली' के आगे 'बादशाह' हुए डवाँडोल,बॉक्स ऑफिस चाहे कुछ भी कहे !!!- अभिषेक त्रिपाठी 20
- बाजीराव मस्तानी:दास्तान-ए-प्रेम -रुद्रभानु प्रताप सिंह 22

शोध

- Linguistic Relativity Revisited: A Cognitive Linguistic Approach to Translation Studies- Sanjukta Ghosh 24

सृजन

- लेखनी – प्रदीप त्रिपाठी 33
- तूलिका – कुँवर रवींद्र 34
- हस्तशिल्प – ममता कुमारी 36
- कैमरा – नरेश गौतम 37

बातचीत

- I feel proud of my Son Shahid Kapoor who is a great Actor and Dancer: Neelima Azeem – Md.Iqbal Ahmad 38
- अनुवादक - चित्रा मुद्गल- कुलदीप कुमार पाण्डेय 40

भाषा

- हिंदी का ऐतिहासिक और वर्तमान स्वरूप अवधेश्वरी भगत 42

अनूदित

- अनूदित कहानी मारुति कार- लतिका चावड़ा 44

अभ्यास

- कैमरा लेंस : प्रारंभिक परिचय एवं प्रयोग- प्रवीण सिंह चौहान 48

EDITOR

Megha Acharya

Praveen Singh Chauhan

अपनी बात...

'ट्रांसफ्रेम' जनवरी-फरवरी का तीसरा अंक नववर्ष की शुभकामनाओं के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत है.....

कुछ छूट जाना और और कुछ नया जुड़ जाना अनुवाद की वास्तविकता है उसी प्रकार समय भी अपने साथ कुछ नया लेकर आता है और पुराना, काल में कहीं खोता चला जाता है... गत वर्ष 25 दिसंबर को फ़िल्म जगत ने अपने फ़लक से एक नामचीन सितारा खो दिया। 'ट्रांसफ्रेम' परिवार की ओर से साधना जी को विनम्र श्रद्धांजली....!

नववर्ष में पदार्पण के साथ 'ट्रांसफ्रेम परिवार' में चार नए सदस्य- श्री प्रदीप त्रिपाठी, श्री अभिषेक त्रिपाठी, श्री मुहम्मद इकबाल अहमद और श्री कुलदीप कुमार पाण्डेय भी जुड़ गए हैं। इनका स्वागत है। हमें विश्वास है कि ट्रांसफ्रेम परिवार का समवेत प्रयास आप सभी प्रबुद्ध पाठकों के ज्ञान पिपासा को पूर्ण करेगा....

संपादक

PUBLISHER

Praveen Singh Chauhan

Contact- +91 9763706428

E-mail–praveenkrish66@gmail.com

Address-

301 Kahsi Niwas, Mandawi Gully

Versova, Andheri (w) Mumbai

400061

©All Rights Reserved

ट्रांसफ्रेम में प्रकाशित रचनाओं के साथ संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होंगे।

अध्ययन

तकनीकी की रंगबिरंगी दुनिया

''कैमरे का अस्तित्व आंख की क्रियाविधि के महज अति सूक्ष्म क्रियान्वयन की ही परिणति है।''

''The basic science behind movies has nothing to do with lenses, gears, electric motors, or electronics – it's all about how our eyes and brain work.''

लोगों की आँखें चौधियाई हुईं थी। लोग भौचक्के हो परदे की ओर ताक रहे थे, उन्हें अपनी आँखों देखी पर भरोसा नहीं था। क्या ऐसा भी हो सकता है? कुछ स्वयं को चिकोटकर इस बात के लिए आश्वस्त हो रहे थे कि वे जगे हुये हैं!

कुछ ऐसे भी लोंग थे जिन्हें इस बात का पूर्णरूप से ऐतबार था कि वे स्वप्न में नहीं हैं; और जब उन्हे, पर्दे पर चलती हुई ट्रेन नज़र आ गयी तो वे घबराकर भागने लगे; क्योंकि उन्हें ऐसा लगा था कि बस अब ट्रेन उनके ऊपर से ही गुजर जाएगी।

यह दृश्य था पेरिस के ग्रांड कैफे होटल के इंडियन सैलून नामक कक्ष का। जहाँ 28 दिसम्बर 1895 को ल्यूमियर बंधुओं ने अपने द्वारा निर्मित दस फिल्में दिखाकर एक ऐसे विधा का श्रीगणेष किया जिसने कालांतर में मानव समाज को खूब हँसाया, खूब रूलाया, मनोरंजन के मुलम्मे में सराबोर कर दिया। और आज भी बिना ठहराव के निरंतर मनोरंजन के अद्भुत कर्म में लगा हुआ है।

फिल्म कैमरे द्वारा गतिशील छवियों की रिकार्डिंग और प्रक्षेपण! यह प्रक्रिया मानव समाज के लिए कदापि अद्भुत नहीं होगी यदि हम इस बात पर थोड़ा गहनता से गौर फरमा लें -

> **फिल्म कैमरे द्वारा गतिशील छवियों की रिकार्डिंग और प्रक्षेपण! यह प्रक्रिया मानव समाज के लिए कदापि अद्भुत नहीं होगी यदि हम इस बात पर थोड़ा गहनता से गौर फरमा लें ...**

इस तरह की प्रक्रिया के सुखद परिणाम से हर वह मनुष्य जन्म के साथ ही निरंतर दो चार होना शुरू कर देता है जिसे प्रकृति ने अद्भुत, विलक्षण अंग आँख से नवाजा है। ऐसा अंग जिसके समक्ष मूवी कैमरे और प्रोजेक्टर मशीन की बिसात कुछ नहीं; जो कुछ थोड़ा बहुत महत्व है, वह सिर्फ इस अंग के नाते ही है।

दरअसल आँख स्थिर चीज़ों को तो स्थिर रूप में देखता ही है; साथ में हर गति को भी स्थिर बिम्बों की श्रृंखला के रूप में ही देखता है। यदि आँख वास्तव में गतिशील किसी वस्तु को देंख रहा है तो इसका अभिप्राय यह है कि गति का असंख्य स्थिर इमेज निर्बाध रूप से आँख के माध्यम से रेटिना पर उभरकर दिमाग पर आरोपित हो रहा है और एक प्रक्रिया के तहत गतिशील रूप धारण करता चला जा रहा है।

यदि आँख वास्तविक जीवन में भी गतिशीलता का आभास स्थिर छवियों के रूप में नहीं करता तो सिनेमा कदापि साकार नहीं हो सकती थी। विज्ञान ने आँख के इसी कार्यप्रणालि या यूँ कहें तो कमजोरी को पकड़कर सिनेमा को खड़ा कर दिया।

पर्दे पर गति का सृजन कभी हो ही नहीं सकता। पर्दे पर तो कैमरे द्वारा अंकित स्थिर बिम्ब प्रक्षेपित किए जाते हैं; और वे प्रक्षेपण के बाद भी स्थिर ही रहते हैं; परंतु आँख ही उन्हें अपने खूबियों/खामियों की वजह से गतिशील रूप में देखती है। सारा खेल उस गति का है जिससे स्थिर बिम्ब पर्दे पर एक क्रम में तेजी से बनते-मिटते हैं और आँख धोखा खा जाता है। इस भ्रम की सृष्टि ही सिनेमा है।

The principles behind a movie camera lie in an optical illusion known as persistence of vision. When individual images---each just a little different from the last--- are flashed past us at high speeds, our eyes lose the ability to differentiate between them, and try to appear to move.

अभिषेक त्रिपाठी
+91 9623278236
pingaakshaa@gmail.com

फिल्म कैमरे द्वारा गतिशील छवियों की रिकार्डिंग और प्रोजेक्टर द्वारा उसके प्रक्षेपण की क्रिया बेहद सरल है। इसे बहुत आसानी से समझा बूझा जा सकता है।

मनुष्य की आँख गति को कैसे आत्मसात करती है? इस प्रश्न पर थोड़ा सा मंथन गतिशील कैमरे द्वारा गतिशील छवियों की रिकार्डिंग और प्रोजेक्टर द्वारा उसके पर्दे पर प्रक्षेपण का बुनियादी आधार बयां कर देगा।

आँख की पुतली लेंस का कार्य करती है। जब किसी गतिशील वस्तु से प्रकाश परावर्तित होकर लेंस से गुजरता हुआ रेटिना पर पड़ता है तो वहाँ उसके तेजी से स्थिर प्रतिबिंब बनने शुरू होते हैं। रेटिना पर ज्यों कोई बिंब बनता है, उसी क्षण उसकी सूचना मस्तिश्क को पहुँच जाती है। जब इमेज आँख के आगे से हट जाती है तो दिमाग के अंदर की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उस इमेज का असर कुछ क्षणांश तक आँख में बना रहता है। {दृष्टि का सतत प्रभाव (पर्सिस्टेंस ऑफ विज़न)}

आँख के द्वारा कोई गतिशील वस्तु गतिशील अवस्था में इस वजह से दिखायी देती है क्योंकि वास्तव में दिमाग किसी गतिशील वस्तु को अनगिनत फ्रेम के रूप में आइडेन्टीफाई करता है, किंतु एक फ्रेम के बनने, डिलीट होने और दूसरे फ्रेम के आने के बीच के समयांतराल के एक निश्चित समयांतराल से कम होने पर दो फ्रेमों के बीच का यह गैप खत्म हुआ आभासित होता है। इसे फ्लिकर इफेक्ट कहते हैं।

गतिशील फिल्म कैमराः-

वह कैमरा जिसके द्वारा शूट की गयी घटनाएँ पर्दे पर पुनः उसी रूप में, गतिशीलता के साथ सजीव हो, मूर्तमान हो, गतिशील फिल्म कैमरा कहलाता है।

गतिशील फिल्म कैमरा, स्टील फोटों कैमरे का चमत्कारिक विस्तार है। ऐसा विस्तार जो किसी व्यक्ति, घटना, स्थान के किसी एक क्षण में बनी उसके बस एक स्वरूप विशेष को ही कैद नहीं करता अपितु एक निश्चित समय में उसमें हो रहे प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तन को लगातार स्थिर बिंबों के रूप में कैद करता जाता है; वे सारे स्थिर बिम्ब प्रोजेक्टर के द्वारा पर्दे पर एक निश्चित गति से प्रक्षेपित करने पर मानव नेत्र को गतिशील रूप में नज़र आते हैं।

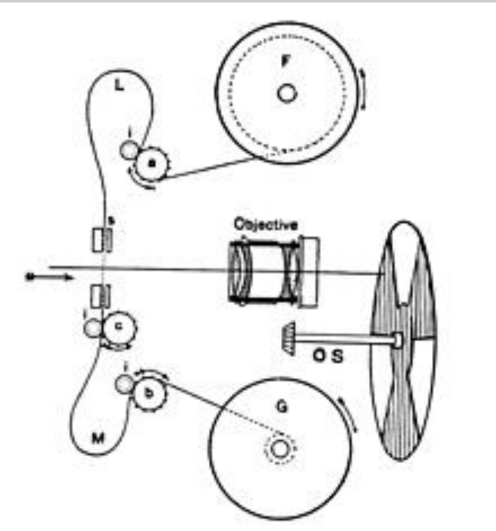

प्रत्येक मूवी कैमरा तब तक अपने अंदर लगी फ़िल्म रील को प्रकाश के संपर्क में आने से बचाये रखती है जब तक कैमरामैन उसे एक्सपोज करने के लिए तैयार नहीं होता। जब कैमरा ऑन होता है तो मोटर चलनी शुरू होती है। फ़िल्म चैंबर के फ़ीड स्पूल में अनएक्सपोज्ड फ़िल्म रोल लगी होती है। पुल डाउन क्लाव बाहर निकलकर फिल्म के प्रत्येक फ्रेम में बने परफ़ोरेशन में फँसकर उसे झटके से नीचे की ओर खींचता है। फिल्म स्प्रोकेटेड रोलर से होते हुए अपरचर गेंट तक आती है। फ़िल्म स्प्रोकेटेड रोलर के दाँतो से बाहर न निकले, इसलिए वहाँ कीपर लगा रहता है जो फ़िल्म को स्प्रोकेटेड रोलर से चिपकाये रखने का काम करता है।

पुल डाउन क्लाव फ्रेम को अपर्चर गेंट के सामने छोड़कर पुनः वापस ऊपर की ओर अगले फ्रेम को नीचे लाने के लिए चला जाता है। पुल डाउन क्लाव ज्यों किसी फ्रेम को नीचे लाकर छोड़ता है और दूसरे फ्रेम को नीचे लाने के लिए वापस ऊपर जाता है उसी दरम्यान कैमरे का शटर जो लेंस के ठीक पीछे स्थित होता है, खुलता है और प्रकाश स्थिर फ़िल्म प्लेन पर पड़ती है और वह एक्सपोज होता है। उस फ्रेम के वहाँ से हिलने से पहले ही शटर बंद हो जाता है।

पुल डाउन क्लाव दुबारा जब दूसरे फ्रेम को अपरचर गेट के सामने लाकर छोड़ता है और फिर अगले फ्रेम को नीचे लाने के लिए वापस ऊपर जाता है तो शटर फिर तेजी से खुलता है, प्रकाश की मात्रा अगले फ़िल्म फ्रेम पर पड़ती है और वह एक्सपोज होता है। प्रत्येक फ्रेम एक सिंगल बिंब को कैप्चर करता है जो कैमरे द्वारा आब्जेक्ट के ठीक पहले रिकॉर्ड किए गए मूवमेण्ट से बिल्कुल हल्का सा ही जुदा होता है।

प्रत्येक फ्रेम सही तरीके से एक्सपोज हो इसके लिए यह अत्यंतावश्यक है कि वह अपरचर गेट के सामने आकर रूके और उसके रूकने के बाद ही शटर खुले और उस पर प्रकाश पड़े और उसके वहाँ से हिलने से पहले ही शटर बंद हो जाए। यहाँ सविराम गति कार्य करता है। यदि फिल्म अपरचर गेंट के सामने आकर न रूके और एक स्पीड से लगातार आगे बढ़ती रहे तो वह ढ़ंग से एक्सपोज नहीं होगी। सीधे सीधे कहें तो खराब हो जाएगी।

मूवी कैमरे में शटर की गति, पुल डाउन क्लाव की गति में इस तरह का समन्वय होता है कि उपर्युक्त क्रिया सफलतापूर्वक संपन्न होती रहती है। फिल्म कैमरे की कार्यपद्धति का यह सबसे विशेष गुण है, जिसके फलतः दर्शक पर्दे पर प्रोजेक्शन के दौरान हूबहू रूप में कैमरे के सामने घटित हुई घटनाओं का रसास्वादन कर पाते हैं।

रिकार्डिंग की उपर्युक्त क्रिया को सफलतापूर्वक संपन्न करने के लिए कैमरे में कई तरह के अन्य कलपुर्जे और क्रियाविधियों का भी इस्तेमाल होता है जो यह सुनिश्चित करता है कि अनएक्सपोज्ड फ़िल्म की फ़ीड स्पूल से निकलकर स्प्रोकेटेड रोलर से होते हुए अपरचर गेंट के सामने आकर भली भाँति ठहरने और फिर वहाँ से एक्सपोज्ड होकर टेकअप स्पूल में पहुँचने की प्रक्रिया निर्बाध रूप से एक्यूरेसी के साथ संपन्न होती रहे।

कैमरे के आधारभूत मैकेनिज्म में दो प्रकार की गति विद्यमान रहती है-

पहली- स्प्रोकेटेड रोलर की लगातार चलने वाली गति;

दूसरी- पुल डाउन क्लाव की सविराम गति।

कैमरे में कुछ स्थान ऐसे होते हैं जहाँ दोनो प्रकार की गतियों का मिलन होता है। ऐसे स्थान पर फ़िल्म खींचकर टूटे नहीं या कैमरा जाम न हो, इससे बचने के लिए लूप बनाए जाते हैं।

शटर की कार्यप्रणाली प्रोजेक्शन के दौरान भी अति महत्वपूर्ण कार्य का संपादन करती है। प्रोजेक्षन के दौरान एक्सपोज्ड फ़िल्म की पट्टी प्रोजेक्टर के माध्यम से चलाकर पर्दे पर प्रक्षेपित की जाती है। पहले प्रोजेक्शन के दौरान प्रोजेक्टर के लाईट चैम्बर में प्रकाश उत्पन्न करने के लिए कार्बन आर्क छड़ का प्रयोग किया जाता था; निरंतर विकास के उपरांत आज बल्ब का प्रयोग किया जाता है। उत्पन्न प्रकाश, लेंस की सहायता से फ़िल्म फ्रेम पर अंकित छवि को पर्दे पर प्रक्षेपित करती है।

प्रत्येक फ्रेम पर्दे पर भली भाँति तभी प्रक्षेपित होगी जब वह गेट के सामने पूर्ण रूप से स्थिर हो। यदि उसमें गति रही और वह प्रक्षेपित हुयी तो पर्दे पर धुंधलापन/ब्लर पैंदा करेगी। चूँकि प्रोजेक्शन मशीन को ढ़ेर सारे फ्रेम को क्रमशः एक के बाद एक पर्दे पर प्रक्षेपित करना रहता है इस नाते फिल्म फ्रेम में गति होती ही है। प्रोजेक्टर में भी पुल डाउन क्लाव होता है जिसके मैकेनिज्म के परिणामस्वरूप फिल्म फ्रेम कुछ क्षण के लिए गेट के सामने स्थिर तो होता है, परंतु उसके पूर्व-पश्चात् की स्थिति गतिशीलता की होती है।

जब जब फिल्म फ्रेम गतिशील रहता है, शटर गिर जाता है और क्षणांश भर के लिए एक ब्लैक फ्रेम क्रिएट करता है; परंतु दृष्टि के सतत प्रभाव के कारण मनुष्य इस ब्लैक फ्रेम को आत्मसात नहीं कर पाता। उस ब्लैक फ्रेम के आने के पहले प्रक्षेपित फ्रेम की चीज़े उसके दिमाग में उसके चले जाने के कुछ क्षण के उपरांत भी बनी रहती हैं। और तब तक दूसरा फ्रेम प्रक्षेपित हो जाता है। इस प्रकार दो फ्रेम बिल्कुल क्रम से जुड़ते हुए एक गति से उसके आँखों के सामने लगातार प्रकट होते प्रतीत होते हैं; परिणामतः स्थिर बिम्बों की कड़ियों में भी उसे गतिशीलता का भ्रम होता है।

देखा जाए तो 24 फ्रेम प्रति सेकण्ड शूट करने वाले गतिशील फिल्म कैमरे में 1 सेकण्ड में 48 फ्रेम बनते हैं जिसमें से 24 फ्रेम ब्लैक होते हैं। लेकिन गतिशीलता के भ्रम के कारण आँख इस ब्लैक फ्रेम को आईडेन्टीफाई नहीं कर पाती।

उपर्युक्त वर्णित गतिशील सिद्धांत के आधार पर फिल्म निर्माण में अनेक प्रयोग हुए। यथा- स्लो मोशन, फास्ट मोशन। गतिशील सिद्धांत के सहारे अनेक प्रकार की विजुअल डिजाइन, इफेक्ट भी सिनेमा में क्रिएट किए जाते हैं।

सिनेमा के विकास की प्रक्रिया पर गौर फरमाएँ तो हम पाएँगे कि 60 फ्रेम प्रति सेकण्ड, 16 फ्रेम प्रति सेकण्ड, 30 फ्रेम प्रति सेकण्ड, 24 फ्रेम प्रति सेकण्ड, इस तरह के कई प्रयोग फिल्म की शूटिंग और प्रक्षेपण में हुए। शुरू में हमें पर्दे पर चल रही फिल्म में मौजूद गति उस अवस्था में नज़र नहीं आती थी जैसी गति हमारी आँख सामान्य जीवन में देखती थी। या तो फिल्म में गति सामान्य जीवन की गति से कम नज़र आती थी या तो ज़्यादा। जैसे ही फ़िल्में 24 फ्रेम प्रति सेकण्ड की दर से प्रक्षेपित होने लगीं, जो गति आँख के गतिशीलता को पकड़ने के मानक के करीब थी, हम फिल्मी गति को बिल्कुल वास्तविक जीवन के तुल्य पाने लगे।

यदि हम आँख की गतिशीलता पद्धति के मद्देनज़र प्रोजेक्टर की प्रक्षेपण पद्धति का विश्लेषण करें तो-

यदि प्रोजेक्टर 1 सेकण्ड में 24 फ्रेम प्रक्षेपित कर रहा है तो एक फ्रेम का समय 1/24 सेकण्ड होगा। यदि हम वैज्ञानिक दृश्टिकोण से अध्ययन व विष्लेशण करें तो यदि एक फ्रेम की गति 1/24 सेकण्ड है और दूसरे फ्रेम की गति 1/24 सेकण्ड है। इसप्रकार एक फ्रेम के जाने

और दूसरे फ्रेम के आने की औसत गति-

1/24 + 1/24 = 2/24

= 1/12 सेकण्ड

अर्थात् एक फ्रेम के जाने और दूसरे फ्रेम के आने बीच औसत समयांतराल 1/12 सेकण्ड है। चूँकि आँख के द्वारा गतिशीलता की रीडिंग के लिए आवश्यक बुनियादी तत्वों के अनुसार यदि दो फ्रेमों के बीच में 1/10 सेकण्ड से कम का समयांतराल हो तो हमें वो सामान्य गति की अवस्था में दिखायी पड़ती है।

यहाँ चूँकि 1/12 < 1/10

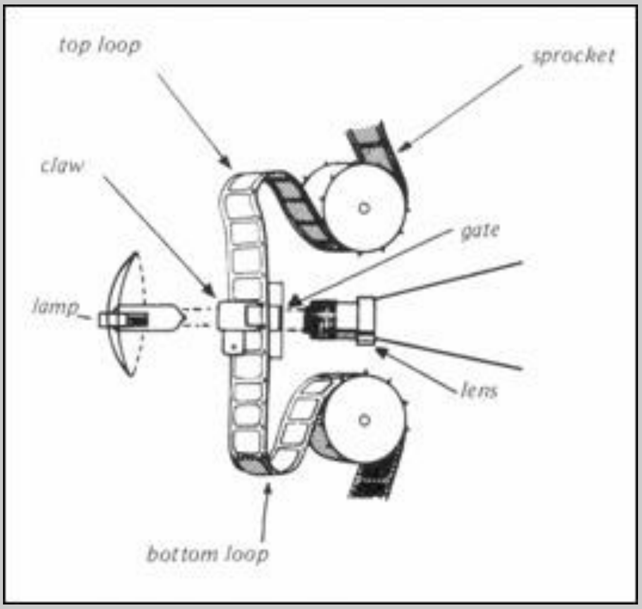

इसलिए वे हमारी आँखों को गतिशील दिखायी देंगे। यद्यपि यह स्पीड आँख के सिद्धांत के हूबहू तो नहीं है, परंतु बिल्कुल करीब है; इस नाते गतिशीलता का भ्रम उत्पन्न होता है।

फ़िल्म कैमरे द्वारा गतिशील छवियों की रिकार्डिंग और प्रोजेक्टर द्वारा उसके प्रक्षेपण में सटीकता तथा समन्वय का जो खेल है, वह अद्वितीय किस्म का है। इस सटीकता और समन्वय के खेल का परिणाम ही है कि फिल्म पट्टी पर एक अनोखी रचना भली भाँति रचित होती है और फिर दर्शक उसका आस्वादन कर पाते हैं।

इस 'सटीकता और समन्वय के खेल' के पीछे जो बुनियादी सिद्धांत हैं वे फिल्म विधा के लिए प्राणवायु सदृश हैं। उन सिद्धांतों की महत्ता बस इसी बात से स्थापित होती है कि उनकी अवहेलना फिल्म को क्षणांश में मृत, कैमरे और प्रोजेक्टर को खिलौना और कबाड़ में बेचे जाने लायक वस्तु बना देगी।

संदर्भ ग्रंथ :-

- Herbert, Stephen: *Persistence of Vision*.
- [WWW document] URL: http://www.grand-illusions.com/percept.htm
- रयाज़ हसन: सिनेमा उद्भव और विकास

FILM & Translation STUDIES

अध्ययन

मराठी से अनूदित ‘जूझ’ उपन्यास का हिंदी अनुवादपरक अध्ययन

बहुभाषी भारत में मराठी और हिंदी दोनों भगिनी भाषाओं का मूल स्रोत संस्कृत है और लिपि देवनागरी है। दोनों भाषाओं में तत्सम और तदभव शब्दों का प्रयोग होता है। वाक्य रचना में भी थोड़ी-बहुत समानता है। मराठी भाषा की वाक्य रचना में लंबी-लंबी वाक्यवली लिखने की पद्धति है। वाक्य रचना समान होने पर भी मराठी से हिंदी और हिंदी से मराठी में अनुवाद सरल नहीं है। इसका कारण मराठी भाषा का स्वभाव धर्म है। प्रत्येक भाषा की अपनी एक भाषिक संरचना होती है। प्रत्येक भाषा का अपना एक ढंग होता है। प्रत्येक शब्दों की अलग छटा, लकब, होती है। भाषा बदलने पर शब्दों के अर्थ बदते है। इसलिए अनुवाद को दोनों भाषा की संरचना, रूप, शब्दावली, लिखने का ढंग, स्वभाव धर्म को समझना आवश्यक है।

साहित्यकार के सृजनात्मकता की की तरह अनुवादक में रचनात्मक कला और कौशल आवश्यक है। अनुवाद कार्य एक कठिन कार्य है। अनुवाद करते समय अनुवादक के लिए अनेक जटिल समस्याओं का समाधान करना ही कठिन कार्य होता है। ग्रामीण साहित्य का अनुवाद करने के लिए अनुवादक को ग्रामीण परिवेश, संस्कृति, लोकोक्ति, मुहावरों का ज्ञान होना आवश्यक है। स्रोत भाषा के सांस्कृतिक शब्दों को लक्ष्य भाषा में सही अर्थ में ला पाना अनुवादक के सामने एक बड़ी समस्या होती है। “हर अनुवाद अपना एक अलग अनुवादक माँगता है” यह कथन ‘‘झोंबी’’ आत्मकथात्मक उपन्यास के अनुवाद पर लागू होता है। ‘‘झोंबी’’ आनंद यादव का आत्मकथात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में डॉ. आनंद यादव ने अपने बचपन के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण अपनी मराठी की बोली में किया है। इसमें सांस्कृतिक, सामाजिक, कृषि, शैक्षणिक शब्दावली लोक परंपरा, लोकोक्तियां, मुहावरों आदि अनेक रूपों का प्रयोग हुआ है। इस उपन्यास में सामाजिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक घटनाओं का समावेश अधिक है। इसीलिए अनुवादक की योग्यता, दोनों भाषाओं के साथ संबंध दोनों भाषाओं में उसकी दक्षता का स्वरूप कृति का स्तर एवं विधागत वैशिष्ट आदि कितनी बातें है जो अनुवाद-समस्याओं का स्वरूप निश्चित करती है।

साहित्यकार के सृजनात्मकता की की तरह अनुवादक में रचनात्मक कला और कौशल आवश्यक है। अनुवाद कार्य एक कठिन कार्य है।

मराठी उपन्यास ‘झोंबी’ का अनुवाद डॉ. केशव प्रथमवीर ने हिंदी में (जूझ) किया जिसका प्रकाशन 1991 में भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से किया गया। संभव हैं कि इस ग्रामीण उपन्यास का अनुवाद करने में लक्ष्य भाषा हिंदी, अनुवादक की मातृभाषा होने के कारण अनुवाद करने में ज्यादा कठिनाइयाँ नहीं आई; फिर भी मराठी और हिंदी क्षेत्र की सांस्कृतिक भिन्नता के कारण अनुवाद की समस्याओं से गुजरना पड़ता ही है। सर्वप्रथम अनुवादक के सामने यह प्रश्न खड़ा हुआ कि ग्रामीण बोली के सौंदर्य को अनुवाद में कैसे लाया जाए? ग्रामीण जीवन, संस्कृति और संवेदनाओं की ठीक-ठीक अभिव्यक्ति संबंधित ग्रामीण बोली के माध्यम से हो सकती है। इस समस्या के लिए अनुवादक ने अपने बचपन के परिवेश की ग्रामीण बोली भाषा-ब्रज-बुन्देली का थोड़ा छौंक लगाया। विशेषतः संवादों के अनुवाद में यह प्रयोग किया गया। ‘झोंबी’ का परिवेश, भाषा और चरित्र कागलगाँव का है, जो कोल्हापुर जिले के दक्षिण महाराष्ट्र में लगभग कर्नाटक प्रांत के पास है। अब वहाँ के व्यक्तियों के नाम जकते, घाडगे, नाडगोंडे, दादा, आन्ना, तात्या, आंद्या, दगड़ू, धोंड्या आदि का उच्चारण हिंदी की बोली में बिलकुल अस्वाभाविक लगता है। ‘झोंबी’ का अनुवाद ‘जूझ’ में अनुवादक ने अनेक मराठी शब्द-रूपों तथा मुहावरों का ज्यों का त्यों अपनाया है। जैसे- धार काढ़ना, खाली, रांजन, छिपटी, खराटा, मुंडास, लुगड़, दगदग, चटक लगाना, उघड़ना आदि। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग मराठी और हिंदी भाषा की बोलियों में प्रयुक्त होते है। साथ ही संवादों में भाषाई देहातीपन का थोड़ा स्वाद लाने हेतु इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है।

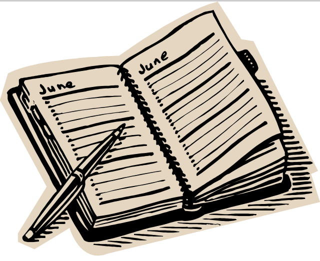

नेव्हल अमोल अप्पासाहेब
एम. फिल. अनुवाद अध्ययन
+91 9011115092
nevhalamol1991@gmail.com

जब दोनों भाषाई समाजों में भिन्नता के चलते लक्ष्य भाषा में पर्याय चयन की समस्याएँ आती हैं। अनुवाद प्रक्रिया में मूल का बोधन अनुवाद कार्य की महत्वपूर्ण समस्या है। उपन्यास की विशिष्ट शब्दावली इस समस्याओं को जन्म देती है। सांस्कृतिक शब्दावली और ग्रामीण बोली-भाषा का अधिक

प्रयोग 'झोंबी' उपन्यास की विशेषता है। भारतीय ग्रामीण जीवन और किसान के बेटे का शिक्षा प्राप्ति के लिए संघर्ष आदि समग्र पक्षों को व्यापक स्तर पर अंकित करना प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य रहा है। इस उपन्यास में पर्वत-पहाड़, नदी-नाले, पेड़-पौधे, मेले-त्यौहार, लोक परंपरा -लोकोक्तियां गालियाँ आदि का उल्लेख हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य पात्र 'आनंद' किसान परिवार से होने के कारण खेती के छोटे-मोटे औजारों, जोताई, गोड़ाई, खोदाई, ढुलाई, बोवाई, रोपाई, सिंचाई के कार्य, शादी-ब्याह, पर्व-त्योंहार, झगड़े-दंगे आदि अनेक उत्साहपूर्ण प्रसंगों की इसमें भरमार हुई है। इस उपन्यास के सभी पात्र किसान के परिवार के अशिक्षित है और इनकी भाषा शैली देहाती है। ग्रामीण परिवेश की भाषा को समझने के लिए उस परिवेश में रहकर उस सांस्कृतिक एवं कृषि शब्दावली और लोकोतियों-मुहावरों का अर्थ समझना चाहिए; तभी ग्रामीण साहित्य या कृति का अनुवाद सही हो सकता है।

इस उपन्यास में प्रस्तुत मराठी ग्रामीण जीवन का अनुभव अनुवादक ने अपने बचपन में दिगरौता, जिला-आगरा (उत्तर-प्रदेश) इस हिंदी ग्रामीण परिवेश में लिया था। वह ग्रामीण संस्कृति से परिचित थे। खेती के काम, सामग्री, गाँव की बोली-भाषा, लोकोक्तियों, शादी, त्यौहार, झगड़े आदि का अनुभव अनुवादक ने हिंदी भाषिक क्षेत्र में लिया था। इसलिए अनुवादक को हिंदी अनुवाद कार्य में ज्यादा समस्या नहीं आई। जब भी समस्या आती थी तब अनुवादक लेखक डॉ. आनंद यादव से साहायता लेते थे, जिस समय 'झोंबी' का अनुवाद कार्य चल रहा था उस समय डॉ. यादव पुणे विश्वविद्यालय मराठी विभाग के अध्यक्ष थे और अनुवादक डॉ. केशव प्रथमवीर इसी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में थे। इसलिए हर समय लेखक और अनुवादक का संपर्क सहज होता था। 'झोंबी' में उद्घाटित प्रसंगों और घटनाओं को समझने में लेखक की बड़ी सहायता प्राप्त हुई। 'झोंबी' उपन्यास में स्थानीय उत्सवों-त्योंहारों, रीति-रिवाज, खेल-खुदों, विभिन्न जाति-जमातों कि विभिन्न प्रकार के लोकाचारों, कृषि के संबंधित स्थानीय प्रक्रियाओं, फसलों, वनस्पतियों, ऐतिहासिक संदर्भों आदि को समझने में अनुवादक को बहुत समस्याओं से गुजरना पड़ा है। इन सभी बातों को साधारण कोशों के आधार पर नहीं समझा जा सकता है। इसलिए अनुवादक ने लेखक और उस क्षेत्र से परिचित दोस्तों से सहायता प्राप्त की, और जिन स्थानीय विशेषताओं का अनुवाद नहीं किया जा सकता था उनको मूल नामों के साथ ही लिखा गया है और संक्षिप्त में 'पाद टिप्पणियों' के द्वारा उनका स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया गया है।

अनुवाद विश्व की कई भाषाओं में किया जाता है। 'झोंबी' उपन्यास का अनुवाद हिंदी, बंगाली, कन्नड भाषाओं में हुआ हैं। पर मेरा संबंध प्रायः मराठी से हिंदी में अनुवाद के संदर्भ में है। इसलिए यहाँ पर सिर्फ 'झोंबी' उपन्यास का मराठी से हिंदी अनुवाद कार्य में आई हुई समस्याओं का विचार करना उचित है।

मराठी और हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान

अनुवादक के लिए सबसे जरूरी बात है कि उसे दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। इससे वह स्त्रोत भाषा में कही गई बात को ठीक तरह से ग्रहण करता है और उस बात को लक्ष्य भाषा में उसी रूप में सार्थक ढंग से अभिव्यक्त करता है। अनुवाद करते समय अनुवादक के समक्ष दो भाषाएँ होती है। चूंकि हर भाषा एक विशिष्ट परिवेश में पनपती है, इसलिए उसकी अपनी अनेक ध्वन्यात्मक, शाब्दिक, रूपात्मक, वाक्यात्मक, मुहावरे विषयक या लोकोक्ति विषयक निजी विशेषताएँ होती है। इसलिए यह आवश्यक नहीं कि स्त्रोत भाषा की किसी अभिव्यक्ति के पूर्णतः समान शब्द और अर्थ की दृष्टि से अभिव्यक्ति लक्ष्य भाषा में व्यक्त हो। जैसे-

मूल- "आपुन धड़ तर सगळी दुनिया धड़" (पृ.92)

अनु.- "आप मजबूत तो सारी दुनिया मजबूत" (पृ.99)

मूल पाठ में 'आपुन' इस शब्द का हिंदी अर्थ 'हम' होता है परंतु अनूदित पाठ में 'आप' शब्द के रुप में अनुवाद किया है और 'धड़' शब्द का अर्थ 'ठीक' से होता है 'धड़' शब्द के लिए हिंदी भाषा में समतुल्य अर्थ देनेवाला शब्द नहीं मिलता है इसलिए अनुवादक ने इस का अनुवाद 'मजबूत' किया है। पर यह गलत नहीं है, क्योंकि अनूदित वाक्य में मूल वाक्य का सही अर्थ प्रस्तुत हो रहा है। कई बार मराठी भाषा के समतुल्य शब्द हिंदी भाषा में नहीं मिलते है। ऐसी स्थिति में हिंदी भाषा में उसकी अभिव्यक्ति करते समय वह विस्तृत हो जाता है।

शब्दानुवाद या भावानुवाद अनुवाद विषय की प्रवृत्ति के अनुसार किया जाना चाहिए। अक्सर देखा जाता है कि जहां अनुवादक को अर्थ स्पष्ट दिखाई देता है वहाँ वह अर्थ अनुवाद का सहारा ले लेता है और जहां भाषा या विषय दुरूह लगता है वहाँ वह शॉर्ट कट को अपनाकर भावानुवाद की छलांग मारता है।

भाषाओं के स्वभाव से परिचय

अनुवाद में स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के अच्छे ज्ञान के अतिरिक्त दोनों भाषाओं के स्वभाव से भी परिचित होना जरूरी है। यह स्वभाव प्राय: संबंधित संस्कृति के संबंध होता है। परंपरा के कारण कुछ विशिष्ट अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है, जिनका हिंदी भाषा में शब्द्श: अनुवाद करने पर वह अटपटा या हास्यस्पद बन जाता है।

मूल- आवडती राणी, नावडती राणी (पृ.112)

अनु- प्यारी रानी, अप्यारी रानी (पृ.121)

शब्दों का प्रयोग –

शब्दों के प्रयोग पर अत्याधिक ध्यान देना आवश्यक है। यह बात मराठी भाषा और हिंदी भाषा में किए जाने वाले अनुवाद में विशेष महत्वपूर्ण है। उचित शब्द न मिलने पर प्राय: अनुवादक मराठी शब्द का प्रयोग अनुवाद में करता है। कुछ शब्द मराठी और हिंदी भाषा में समान होने पर भी दोनों भाषाओं में इसका अर्थ अलग-अलग होता है। निम्नलिखित शब्दों पर गौर करें। ये मराठी और हिंदी दोनों भाषाओं में प्रयुक्त होते है। पर उनका अर्थ अलग-अलग है। मराठी अर्थ को कोष्ठक में दिया है।

शब्द – शिक्षा (शिक्षण), सजा (शिक्षा), खाली (रिकामा), नीचे (खाली), हरकत (आपत्ति), आपत्ति (विपत्ति), यात्रा (तीर्थयात्रा), प्रदर्शन (प्रदर्शनी), संचार (विचरण) मराठी भाषा के हिंदी अनुवाद में जो का त्यों अपनाए गए शब्द। उघड़ना (खोलना), धार काढ़ना (दूध निकालना), खाली (नीचे), खराटा (झाड़ू), लुगड़ (साड़ी या धोती) इस प्रकार के शब्द मराठी और हिंदी ग्रामीण प्रदेश में बोली में प्रयुक्त होते हैं।

वाक्यविन्यास –

हिंदी और मराठी भाषा के वाक्यविन्यास में कई बार काफी अंतर होता है। इसलिए अनुवाद करते समय संबंधित भाषा के वाक्यविन्यास की प्रणाली को अपनाना चाहिए। अन्यथा स्वाभाविक नहीं लगेगा। मराठी में मुख्य वाक्य बाद में आता है और गौण वाक्य मुख्य वाक्य के पहले आता है । वहीं हिंदी में मुख्य वाक्य पहले और गौण वाक्य बाद में आता है।

जैसे – मराठी वाक्य – 'तू जा असे मी त्याला सांगितलं.'

हिंदी वाक्य - 'मैंने उसे कहा की तुम जाओ।'

उदा. मूल- मला रामा आल्याचा आनंद झाला. (पृ.117)

अनु- रामा के आ जाने से मुझे अच्छा लगा। (पृ.127)

यह बात दोनों भाषाओं में लंबे मिश्र वाक्य के मामले में विशेष महत्वपूर्ण होती है। मराठी हिंदी अनुवाद करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। सहसा इन दोनों भाषा के अनुवाद मूल भाषा का वाक्य विन्यास अपनाया जाता है।

व्याकरण का सटीक ज्ञान

"अनुवाद में स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के व्याकरण का सटीक और तुलनात्मक ज्ञान बड़ा महत्व रखता है। लिंग, वचन और विभक्ति का सही रूप में तभी प्रयोग किया जा सकता है जब व्याकरण का सूक्ष्म ज्ञान हो"।1 मराठी में तीन लिंग है जबकि हिंदी भाषा में दो मराठी भाषा में स्त्री लिंग और पुल्लिंग का भेद केवल सजीव प्राणियों में किया जाता है और सभी निर्जीव वस्तुओं का लिंग नपुसंक लिंग माना जाता है। पुलिस सरकार जैसे शब्द हिंदी में स्त्रीलिंगी है, मराठी में पुल्लिंग और नपुंसक लिंग। इसी प्रकार मराठी के नपुंसक लिंग के कुछ शब्द पुल्लिंग हैं तो कुछ स्त्रीलिंग यदि लिंग में गलती हो तो वचन गलत हो जाता है। और वचन गलत होने पर कारक के प्रयोग में भूल हो जाती है। इस प्रकार की समस्या इस अनूदित अपन्यास में आई है।

मूल- मी माळव इकायला पुढं जातो. (पृ.88) पुल्लिंग

अनु- मैं साग-भाजी बेचने आगे चलती हूँ। (पृ.94) स्त्रीलिंग

महाराष्ट्र के कुछ क्षेत्र की कुछ महिलाएं अपने आप को पुलिंग की भाषा में प्रस्तुत करती हैं। इस बात का ज्ञान अनुवादक को होने के कारण उन्होंने अनुवाद में स्त्रियों द्वारा बोलें गए पुल्लिंग संवाद को स्त्रीलिंगी संवाद की भाषा में प्रस्तुत किया है।

सांस्कृतिक भिन्नता का ज्ञान –

मराठी भाषिक रचना का हिंदी में अनुवाद करते समय अनुवादक को मराठी भाषा जिन क्षेत्रों में बोली जाती है उस क्षेत्रों को संस्कृतियों का विशेष कर उनमें पाई जाने वाली भिन्नताओं का विशेष ज्ञान रखता होता है। महाराष्ट्र में जैसे– पोळा, गणेश की भक्ति, विठ्ठल की भक्ति का प्रचलन अधिक है। वारकारी संप्रदाय, दत्त संप्रदाय का प्रसार अधिक है। महाराष्ट्र में कुछ जतियों में मामा-भांजी और मामा-फूफी के भाई-बहनों में भी शादी हो जाती है। जबकि हिंदी क्षेत्र मामा-भानजी और मामा-फूफी के भाई-बहनों में शादी नहीं होती। हिंदी क्षेत्र में कृष्ण भक्ति और राम भक्ति का प्रसार अधिक है। हिंदी क्षेत्र में पोळा, वटसावित्री, नागपंचमी आदि अनेक त्यौहार मनाएं नहीं जाते। इस प्रकार की भिन्नता मराठी और हिंदी संस्कृति में दिखाई देते है। हिंदी भाषा और मराठी भाषाओं के पंचांग में भी अंतर है। हिंदी भाषी क्षेत्र में पौर्णिमा से पौर्णिमा तक मास गिना जाता है। जब की महाराष्ट्र में अमावस से अमावस तक। महाराष्ट्र का चैत्र मास हिंदी भाषा क्षेत्र में वैशाख वध होता है। महाराष्ट्र में शालीवाहन, शक्का अधिक प्रयोग किया जाता है। जब की हिंदी भाषी क्षेत्र में विक्रम संवत का।

इस प्रकार दोनों भाषाओं के समारोह में और पंचांग में काफी भिन्नता पाई जाती है और जब ऐसे समारोहों, त्यौहारों, व्रतों का हिंदी भाषा में अनुवाद करते समय काफी समस्याओं का सामना करना होता है। आवश्यकता पढ़ने पर पाद टिप्पणी देकर ऐसी बातों को समझाया जाता है। जैसे – बैलों का त्योहार- पोळा, वारकरी संप्रदाय और मामा-भानजी और मामा-फूफी के भाई-बहनों के साथ शादी करना। इस प्रकार की भिन्नता से अनुवाद कार्य में समस्या आती है।

शब्दावली की समानता-

“अनुवाद करते समय स्त्रोत भाषा के किसी शब्द के लिए अपनाया गया लक्ष्य भाषा का शब्द संपूर्ण अनुवाद में यथावत प्रयुक्त किया जाना चाहिए। स्त्रोत भाषा के एक शब्द के लिए लक्ष्य भाषा में अलग अलग शब्द अपनाना उचित नहीं होता।” हिंदी भाषी राज्यों में समान शब्द नहीं है। मराठी या अंग्रेजी भाषा के एक शब्द के हिंदी भाषा में अलग अलग शब्द मिलते है।

मराठी-हिंदी शब्दावली

आवडणे – पसंद आना , अच्छा लगाना।
खूप – बहुत, भरपूर, खूब ।
गंमत – मज़ाक, मौजमस्ती, मज़ाकवाली बात।
छान – सुंदर, खूबसूरत, अच्छा, बढ़िया।
नांदणे – सुख से रहना। (मराठी में नांदणे का अर्थ एक विशेष रूप से होता है, लड़की जब ससुराल में राजीखुशी से रह रही होती है तब कहा जाता है “मूलगी सुखात नांदत आहे.”)

अंग्रेजी हिंदी शब्दावली

Homage – श्रद्धांजली, श्रद्धा, वश्यता अंगीकार, भक्तिभाव, निष्ठाभाव।
Accuracy – यथार्थता, शुद्धता, परिशुद्धता, सटीकता, सही होना।
Board – बोर्ड, मंडल, परिषद।

इस प्रकार के अलग अलग शब्दों से अनुवादक दुविधा में फँस जाता है। इससे सटीक शब्द को चुनने में समस्या आ जाती है । इस प्रकार की समस्या से अनुवादक को गुज़ारना पड़ा। अनुवाद ने इस समय प्रवाह, सरलता, स्पष्टता, विषयानुरूप शैली और शब्दावली पर विशेष ध्यान देना पड़ा। अनुवाद में मूल कि-सी भावाभिव्यक्ति हो, वह पढ़ने में मौलिक-सा लगे, वह मूल लेखक का समकालीन लगे, उसमें मूल कृति की शैली प्रतिबिंबित हो। इन सभी बातों का ध्यान अनुवादक को देना आवश्यक है।

इस प्रकार की अनेक समस्याओं से गुजरकर केशव प्रथमवीर ने मराठी उपन्यास ‘झोंबी’ का हिंदी अनुवाद ‘जूझ’ बहुत सटीक और अच्छा किया है।

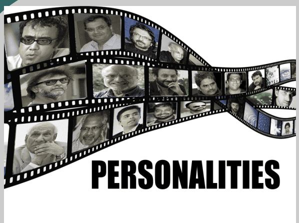

व्यक्तित्व

अल्फ्रेड हिचकॉक

"मास्टर ऑफ सस्पेंस" के नाम पहचाने जाने वाले अल्फ्रेड हिचकॉक बीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रसिद्ध फिल्म निर्देशकों मे से एक थे ।1920 से 1970 के मध्य इन्होने 50 से अधिक फीचर लेंथ की फिल्मों का निर्देशन किया । उनकी छवि, जो अपनी खुद की फिल्मों मे कैमियो और प्रसिद्ध टीवी शो 'अल्फ्रेड हिचकॉक प्रजेंट्स' के प्रत्येक एपिसोड के पहले दिखाई देती थी, रहस्य का पर्याय बन गया।

जीवन-काल :- 13 अगस्त 1899 – 29 अप्रैल 1980

अन्य प्रचलित नाम :- अल्फ्रेड जोसेफ हिचकॉक, हिच, मास्टर ऑफ सस्पेंस, सर अल्फ्रेड हिचकॉक।

-: भय के साथ बड़ा होना :-

अल्फ्रेड जोसेफ हिचकॉक का जन्म लंदन के ईस्ट एंड के लेटनस्टोन में,13 अगस्त1899 को हुआ था। एम्मा जेन हिचकॉक जो काफी जिद्दी मानी जाती थी और विलियम हिचकॉक जो एक किराने की दुकान चलाते थे, बहुत कठोर होने के लिए जाने जाते थे, इनके माता-पिता थे। अल्फ्रेड हिचकॉक से बड़े दो और भाई बहन थे, एक भाई विलियम और एक बहन ऐलीन।

जब हिचकॉक केवल 5 वर्ष के थे तब उनके कठोर और कैथोलिक पिता ने एक महत्वपूर्ण सबक सिखाने के दौरान उन्हे काफी भयभीत कर दिया। हिचकॉक के पिता ने एक पत्र देकर उन्हे एक स्थानीय पुलिस स्टेशन में भेज दिया। ड्यूटी पर तैनात पुलिस अधिकारी ने वो पत्र पढ़ा और हिचकॉक को कई मिनटों के लिए एक सेल मे बंद कर दिया ।हिचकॉक पर इसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि उनके पिता उन्हे यह समझाने का प्रयास कर रहे थे कि जो लोग बुरा काम करते हैं उनके साथ क्या होता है। हिचकॉक को इस घटना ने अंदर तक झकझोर दिया। इस घटना का परिणाम यह हुआ कि हिचकॉक के मन में हमेशा के लिए पुलिस को लेकर डर बैठ गया।

अल्फ्रेड हमेशा कहा करते थे कि उनका बचपन बहुत अकेला और बिखरा हुआ था। खाली समय में जब हिचकॉक अकेले होते थे तो उन्हे नक्शे पर नए नए खेलों को बनाना और खोज करना पसंद था। वे लंदन के कैथोलिक, सेंट इग्नाटियस कॉलेज बोर्डिंग स्कूल गए। 14 वर्ष कि उम्र में हिचकॉक ने अपने पिता को खो दिया और सेंट इग्नाटियस कॉलेज को छोड़ दिया। 1913 से 1915 तक हिचकॉक ने पोपलर के लंदन काउंटी काउंसिल स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग एंड नेविगेशन मे ड्राफ्टमैनशिप [आलेखन] सीखी।

> अल्फ्रेड हमेशा कहा करते थे कि उनका बचपन बहुत अकेला और बिखरा हुआ था।

-: हिचकॉक की पहली नौकरी :-

स्नातक होने के बाद, हिचकॉक को डबल्यू.टी.हेनले टेलीग्राफ कंपनी, जो बिजली के तार बनाती थी, के लिए एक आकलनकर्ता के रूप में 1915 में अपनी पहली नौकरी मिली। अपने काम से ऊब कर हिचकॉक नियमित रूप से शाम को सिनेमा देखने जाते, सिनेमा व्यवसाय से जुड़े समाचार पत्र पढ़ते , और लंदन विश्वविद्यालय में ड्राइंग की कक्षाएं लेते थे।

हिचकॉक में आत्मविश्वास आया और उन्होने काम के नीरस और मज़ाकिया पक्ष को दिखाना शुरू किया। वे हिच नाम से अपने सहयोगियों के हास्यचित्र [कैरीकेचर] बनाने शुरू किए और घुमावदार अंत वाली छोटी-छोटी कहानियाँ लिखी। हेनले के सोशल क्लब पत्रिका "द हेनले" ने हिचकॉक के चित्रों और कहानियों का प्रकाशन शुरू किया। नतीजतन हिचकॉक को हेनले के विज्ञापन विभाग में पदोन्नत किया गया। जहां वे एक रचनात्मक विज्ञापन चित्रकार के रूप में बहुत खुश थे।

प्रवीण सिंह चौहान
+91 9763706428
praveenkrrish66@gmail.com

-: हिचकॉक का फिल्म निर्माण में प्रवेश :- 1919 में हिचकॉक ने फिल्म व्यवसाय के अख़बार में एक विज्ञापन देखा कि एक हॉलीवुड कंपनी फेमस प्लेयर लस्की [जो बाद में पैरामाउंट बन गया],ग्रेटर लंदन के पास इस्लिंगटन में एक स्टूडिओ का निर्माण कर रही है। उस समय अमेरिकी फिल्म निर्माता, ब्रिटिश समकक्षों से बेहतर समझे जाते थे और इसीलिए हिचकॉक स्थानीय स्तर पर उनके द्वारा स्टूडियो खोलने को लेकर बहुत उत्साहित थे। उन्हे प्रभावित करने के उद्देश्य से, उनकी पहली मोशन पिक्चर कैसी होनी चाहिए हिचकॉक ने ऐसे विषय की खोज की और इस विषय पर आधारित किताब खरीद कर उसे पढ़ा। उसके बाद हिचकॉक ने उसके टाइटल कार्ड [चित्रित कार्ड जो मूक फिल्मों में संवाद या एक्शन को वर्णित करने के लिए लगाए जाते थे] बनाए। वो अपने टाइटल कार्ड्स को लेकर स्टूडिओ पहुँचे। केवल यह जान कर कि स्टूडिओ वाले पहले ही किसी अलग विषय पर फिल्म बनाने का निर्णय ले चुके हैं,बिना समय गवाए हिचकॉक ने एक नयी किताब पढ़ी, नए टाइटल कार्ड्स बनाए और पुनः स्टूडिओ पहुँचे। उनके ग्राफिक्स के साथ साथ उनके समर्पण से प्रभावित होकर इस्लिंग्टन स्टूडिओ ने उन्हे मूनलाइट में उनके टाइटल कार्ड डिजाइनर के रूप में रख लिया। कुछ ही महीनो के अंदर स्टूडिओ ने 20 वर्षीय हिचकॉक को पूर्ण कालिक नौकरी का प्रस्ताव दिया। हिचकॉक ने वह पद स्वीकार कर लिया और फिल्म निर्माण की अस्थिर दुनिया में प्रवेश करने के लिए हेनले की स्थायी नौकरी छोड़ दी।

आत्मविश्वास से भरे और फिल्म बनाने की इच्छा मन मे रखे हुए हिचकॉक ने पटकथा लेखक, सहायक निर्देशक और सेट डिजाइनर के रूप में मदद करना प्रारम्भ किया।यहाँ पर हिचकॉक की मुलाक़ात "अल्मा रेविल्ली" से हुई जो फिल्म एडिटिंग और कंटीन्युटी की प्रभारी थी। कामेडी फिल्म *आलवेज टेल योर वाइफ [1923]* के फिल्मांकन के दौरान जब निर्देशक बीमार हो गया तब हिचकॉक ने वह फिल्म पूरी की। इसके बाद उन्हे *नंबर थर्टीन* [जो पूरी नहीं हो पाई] को निर्देशित करने का मौका मिला। पैसो की कमी के कारण, कुछ ही दृश्यों के फिल्मांकन के पश्चात मोशन पिक्चर ने फिल्म बंद कर दी और पूरा स्टूडिओ ही बंद पड़ गया।

जब फ्रीडमैन ने स्टूडियो का पदभार संभाला, तब सिर्फ हिचकॉक ही उन कुछ लोगों में से एक थे जिन्हे रुकने के लिए कहा गया था। हिचकॉक वुमेन टू वुमेन (1923) के सहायक निर्देशक और पटकथा लेखक बन गए। हिचकॉक ने कंटिन्युटी और संपादन के लिए वापस अल्मा रेविल्ली को रखा। फिल्म बॉक्स ऑफिस पर सफल रही थी। लेकिन स्टूडियो की अगली फिल्म 'व्हाइट शैडो'(1924) बॉक्स ऑफिस पर विफल रही है और स्टूडियो फिर से बंद हो गया। इस बार, गेन्सबोरो पिक्चर्स ने स्टूडियो का पदभार संभाला और हिचकॉक को फिर से रुके रहने के लिए कहा गया।

-: हिचकॉक का निदेशक के रूप में पदार्पण :-

1924 में हिचकॉक 'द ब्लैकगार्ड' [1925] जिसे बर्लिन में शूट किया गया था, के सहायक निर्देशक थे। यह गेन्सबोरो पिक्चर्स और बर्लिन के यूएफए[UFA] स्टूडिओ के साझेदारी में बनी फिल्म थी। हिचकॉक ने न केवल जर्मन्स के असाधारण सेट्स का लाभ उठाया बल्कि उन्होने जर्मन फिल्म निर्माताओं के द्वारा प्रयोग किए जाने वाले कैमेरा पैन, टिल्ट, ज़ूम, और सेट डिजाइन में परिप्रेक्ष्यता के तरीकों का भी निरीक्षण किया। जर्मन अभिव्यक्तिवाद के लिए प्रसिद्ध जर्मन- एडवेंचर, कॉमेडी और रोमांस के बजाय डार्क, मूडी, विचारोत्तेजक विषय जैसे पागलपन और विश्वासघात का इस्तेमाल किया करते थे। जर्मन फिल्म निर्माता भी हिचकॉक से अमेरिकन तकनीकी (जिसमे फोरग्राउंड के लिए कैमरा लेंस पर सीनरी पेंट की जाती थी) सीख कर उतने ही प्रसन्न थे।1925 में, हिचकॉक को निर्देशक के रूप में अपनी पहली फिल्म द प्लेजर गार्डन (1926) मिली जिसे जर्मनी और इटली दोनों जगहों में फिल्माया गया था। साथ काम करने के लिए हिचकॉक ने फिर अल्मा को चुना लेकिन इस बार मूक फिल्म के लिए उनके सहायक निर्देशक के रूप में। फिल्मांकन के दौरान हिचकॉक और अल्मा के बीच नवोदित रोमांस शुरू हुआ। इसके अलावा यह फिल्म कई परेशानियों के लिए भी याद की जाती है जैसे फिल्मांकन के दौरान क्रू का भाग जाना, साथ ही अंतर्राष्ट्रीय सीमा पार करने के कारण उनके सभी अनएक्सपोज्ड फिल्म को कस्टम द्वारा जब्त कर लेना आदि।

-: हिचकॉक का "विवाह" और एक हिट फिल्म का निर्देशन :- 1 2

फ़रवरी 1926 को हिचकॉक और अल्मा ने शादी कर ली, अल्मा उनकी सभी फिल्मों की प्रमुख सहयोगी बन गई। 1926 में हिचकॉक ने एक सस्पेंस फिल्म 'द लोगर' का निर्देशन किया जो गलत तरीके से आरोपी बनाए गए एक आदमी के बारे में थी और जिसे ब्रिटेन में फिल्माया गया था । हिचकॉक ने स्वयं कहानी चुनी, सामान्य से कम टाइटल कार्ड का इस्तेमाल किया और उसमे हास्य का पुट मिलाया। एक्स्ट्रा कलाकार की कमी के कारण उन्होने फिल्म में एक कैमियो भी किया था लेकिन वितरक को यह पसंद नहीं आई और उसने फिल्म खरीदने से इंकार कर दिया । हिचकॉक दंग रह गए उन्होने स्वयं को असफल व्यक्ति महसूस किया। वो बहुत ज्यादा हताश थे यहाँ तक कि उन्होने कैरियर बदलने का भी विचार किया। सौभाग्य से कुछ ही महीनो बाद एक वितरक ने जो फिल्मों पर बने शॉर्ट चलाता था फिल्म रिलीज की। द लोजर (1927) जनता ने बहुत पसंद की और फिल्म एक बड़ी हिट बन गयी।

-: 1930 के दशक में ब्रिटेन के सर्वश्रेष्ठ निर्देशक :-

हिचकॉक फिल्म निर्माण में बहुत व्यस्त हो गये । वे सप्ताहांत पर शाम्ले ग्रीन नामक स्थानीय घर में रहते थे और सप्ताह के दौरान लंदन के एक फ्लैट में रहते थे। 1928 में अल्मा ने एक बच्ची पेट्रीसिया को जन्म दिया जो इस दंपति का इकलौता बच्चा था। हिचकॉक की अगली बड़ी हिट ब्लैकमेल (1929) थी जो पहली ब्रिटिश टॉकी फिल्म थी ।

1930 के दशक के दौरान, हिचकॉक ने एक के बाद एक कई फिल्में बनाई। उस वस्तु का वर्णन करने के लिए जिसके बाद खलनायक को किसी स्पष्टीकरण की जरूरत नहीं होती थी मैकगुफ़िन [MacGuffin] शब्द का आविष्कार किया । यह बस कहानी को आगे बढ़ाने के लिए प्रयोग किया जाता था। हिचकॉक ने यह अनुभव किया कि उन्हे ज्यादा विवरण देकर दर्शकों को बोर करने की कोई आवश्यकता नहीं थी । मकगुफ़िन कहाँ से आया इससे कोई मतलब नहीं था, बस इसके पीछे कौन था इससे मतलब था । यह टर्म अभी भी समकालीन फिल्म निर्माण में प्रयोग किया जाता है।

प्रारंभिक 1930 के दशक में बॉक्स ऑफिस को कई फ्लॉप फिल्मे देने के बाद हिचकॉक ने 'द मैन हू न्यू टू मच (1934)' बनाई । यह फिल्म ब्रिटिश और अमेरिकन हिट थी जैसे उनकी अगली पाँच फिल्मे थी : 'द 39 स्टेप्स' (1935), सीक्रेट एजेंट (1936), साबोटेग(1936), यंग एंड इनोसेंट (1937), और 'द लेडी वेनीशेज'(1938)। बाद में इन्होने 1938 के सर्वश्रेष्ठ फिल्म का न्यूयॉर्क क्रिटिक्स अवार्ड जीता ।

हिचकॉक ने डेविड ओ. सेल्ज़िंक्क जो कि हॉलीवुड में एक अमेरिकन फिल्म निर्माता और सेल्ज़िंक्क स्टुडियो के मालिक थे का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। 1939 में हिचकॉक ने जो कि उस समय के नंबर एक फिल्म निर्देशक थे, सेल्ज़िंक्क के एक अनुबंध को स्वीकार कर लिया और परिवार समेत हॉलीवुड आ गए ।

-: हॉलीवुड में हिचकॉक :-

अल्मा और पेट्रीसिया दक्षिणी कैलिफोर्निया के मौसम को बहुत पसंद किया करते थे, जबकि हिचकॉक को यह पसंद नहीं था। मौसम कितना भी गर्म क्यों न हो उन्होंने अपना गहरा अंग्रेजी सूट पहनना जारी रखा। स्टूडियो में उन्होंने अपनी पहली अमेरिकी फिल्म रेबेका (1940), जो एक मनोवैज्ञानिक थ्रिलर थी पर बड़े लगन से काम किया। इंग्लैंड में छोटे बजट में काम करने के बाद हिचकॉक बड़े हॉलीवुड संसाधनो से जिनसे वो व्यापक सेट का निर्माण कर सकते थे, बहुत खुश थे।

रेबेका ने 1940 में सर्वश्रेष्ठ फिल्म के लिए ऑस्कर जीता। हिचकॉक सर्वश्रेष्ठ निर्देशकों के नामांकनों में आगे थे लेकिन जॉन फोर्ड 'द ग्रेप्स ऑफ व्राथ' के लिए बाजी मार ले गए ।

-: हिचकॉक के टीवी शोज :-

1955 में हिचकॉक ने शैमले प्रोडक्शंस शुरू किया जो उन्होने अपने पुराने घर के नाम पर रखा और 'अल्फ्रेड हिचकॉक प्रजेंट्स' का निर्माण किया जो आगे चल कर 'अल्फ्रेड हिचकॉक अवर' मे बादल गया । इस सफल टी.वी. शो का प्रसारण 1955 से 1965 तक किया गया। यह शो विभिन्न लेखको द्वारा लिखे गए रहस्यात्मक ड्रामा को हिचकॉक के अंदाज से प्रस्तुत करता था, जिनमे से ज़्यादातर अन्य निर्देशकों द्वारा निर्देशित होते थे। प्रत्येक एपिसोड के पहले हिचकॉक ड्रामा को स्थापित करने के लिए एक मोनोलॉग (एकालाप) प्रस्तुत करते थे जिसकी

शुरुआत 'गुड ईवनिंग' के साथ होती थी। प्रत्येक एपिसोड के अंत में पकड़े गए अपराधी के बारे में या कोई खामी रह जाने पर उसे वर्णित करने के लिए वे वापस आते थे।

हिचकॉक की सबसे लोकप्रिय मूवी 'साइको' (1960),शामले प्रोडक्शंस के टीवी के कर्मचारी द्वारा बहुत कम खर्चे में फिल्माया गया था।

1956 में हिचकॉक एक अमेरिकी नागरिक बन गए, लेकिन वे हमेशा एक ब्रिटिश बने रहे।

-: पुरस्कार , नाइटहुड की उपाधि और हिचकॉक की मौत :-

सर्वश्रेष्ठ निर्देशक के लिए पांच बार नामित होने के बावजूद हिचकॉक ने कभी ऑस्कर नहीं जीता। 1967 के ऑस्कर में इरविंग थालबर्ग मेमोरियल पुरस्कार स्वीकार करते हुए उन्होने बस "धन्यवाद" कहा था।

1979 में अमेरिकी फिल्म संस्थान ने बेवर्ली हिल्टन होटल में आयोजित एक समारोह में लाइफ आचीवमेंट अवार्ड दिया। उन्होंने मजाक में कहा कि अब उन्हे जल्द ही मरना चाहिए।

1980 में महारानी एलिजाबेथ द्वितीय ने हिचकॉक को नाइटहुड की उपाधि दी। तीन महीने बाद सर अल्फ्रेड हिचकॉक की बेल एयर में अपने घर में गुर्दे की खराबी के कारण मृत्यु हो गई।उस समय उनकी उम्र 80 वर्ष थी। उनका अंतिम संस्कार किया गया और अवशेष प्रशांत महासागर में बिखेरा गया था।

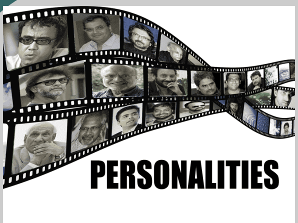

व्यक्तित्व

दिलीप पुरुषोत्तम चित्रे

दिलीप पुरुषोत्तम चित्रे का जन्म 17 सितंबर 1938 में एक मराठी परिवार में गुजरात के बड़ोदा शहर में हुआ। बहुआयामी प्रतिभा के धनी दिलीप चित्रे न केवल मराठी के प्रसिद्ध कवि, कथाकार, लेखक, आलोचक और अनुवादक थे बल्कि चित्रकार, शिल्पकार और फिल्म निर्माता-निर्देशक भी थे। मराठी साहित्यसंसार में सम्माननीय माने जाने वाले लिटिल मॅगज़ीन में चित्रे का योगदान उल्लेखनीय रहा है। दिलीप चित्रे के लेखन केंद्र में सदैव कविता ही रही है। इसके अलावा फिल्मों से जुड़ाव सहित उन्होंने जो भी किया उसे 'भाषाई कौशल का व्यापार' कहा। इस बारे में उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा, "प्रारंभ में मैंने तय किया कि मैं एक लेखक बनूँगा और कविता मेरे लेखन केंद्र में होगी, परंतु यह सबको मालूम है कि कवी अपनी कविता से जीविकोपार्जन नहीं कर सकता। ऐसे में भाषाई कौशल का व्यापार मुझे ही तय करना था।

दिलीप चित्रे न केवल मराठी के प्रसिद्ध कवि, कथाकार, लेखक, आलोचक और अनुवादक थे बल्कि चित्रकार, शिल्पकार और फिल्म निर्माता-निर्देशक भी थे।

दिलीप चित्रे के मराठी साहित्य का अनुवाद जर्मन, फ्रेंच, स्पॅनिश भाषाओं में हुआ हैं। 1969 में उन्होंने फिल्म क्षेत्र में कदम रखा और एक फीचर फिल्म, लगभग एक दर्जन डाक्युमेंटरी फिल्में, कुछ लघु फिल्में आदि बनाई। अपनी अधिकतर फिल्मों का स्क्रिप्ट लेखन और निर्देशन उन्होंने स्वयं किया है। चित्रकला के क्षेत्र में भी अपना हाथ आजमाते हुए अलग अलग जगह चित्र प्रदर्शनियाँ भी लगाई है। चित्रे को 1994 में *एकूण कविता -1* काव्यसंग्रह के लिए **साहित्य अकादमी पुरस्कार** प्राप्त हुआ। 10 दिसंबर 2009 को दिलीप चित्रे अनंत में विलीन हो गए। उनके मराठी, अँग्रेजी मे प्रकाशित साहित्य तथा अन्य लेखन निम्नानुसार है।

मराठी में प्रकाशित साहित्य

- कविता, मौज प्रकाशन, मुंबई, 1960
- ओर्फियस, मौज प्रकाशन, मुंबई, 1968
- शिबा राणीच्या शोधात, मेजेस्टिक, मुंबई, 1969
- कवितेनंतरच्या कविता, वाचा प्रकाशन, औरंगाबाद, 1978
- चाव्या; प्रास प्रकाशन, 1983
- दहा बाय दहा, प्रास प्रकाशन, मुंबई, 1983
- मिठू मिठू पोपट और..., साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, 1979
- तिरकस आणि चौकस, लोकवाङ्मय गृह, मुंबई, 1980
- पुन्हा तुकाराम, 1990 ; द्वितीय संस्करण: 1995; तृतीय संस्करण:2001
- शतकांचा संधिकाळ, लोकवाङ्मय गृह, मुंबई
- भाऊ पाध्ये यांच्या श्रेष्ठ कथा(संपादित), लोकवाङ्मय गृह, मुंबई, 1995
- एकूण कविता-१, पॉप्युलर, मुंबई, 1992; द्वितीय संस्करण : 1995
- एकूण कविता-२, पॉप्युलर; मुंबई;1995
- एकूण कविता-३, पॉप्युलर
- चतुरंग, पॉप्युलर, 1995

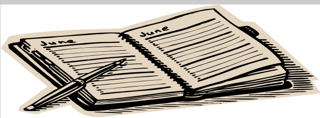

ट्रांसफ्रेम टीम

अँग्रेजी में प्रकाशित साहित्य

- An Anthology of Marathi Poetry (1945-1965) (Editor), Nirmala-Sadanand, Mumbai, 1968
- Ambulance Ride, Self, Mumbai, 1972
- Travelling In A Cage; Clearing House; Mumbai; 1980
- The Reasoning Vision: Jehangir Sabavala's Painterly Universe, Introduction and Notes on the paintings by Dilip Chitre
- Tata-McGraw-Hill, New Delhi, 1980
- Tender Ironies: A Tribute To Lothar Lutze (Editor), Manohar, New Delhi, 1994
- Shri Jnandev's Anubhavamrut: The Immortal Experience of Being, Sahitya Akademi, New Delhi, 1996
- The Mountain, Vijaya Chitre, Pune, 1998
- No-Moon Monday On The River Karha, Vijaya Chitre, Pune, 2000

संपादन

- शब्द (त्रैमासिक) 1954-1960
- New Quest (1978-1980), (2001-), Mumbai

स्तंभलेखन

- Free Press Journal, Mumbai(1959-1960)
- लोकसत्ता
- मुंबई दिनांक
- रविवार सकाळ
- New Quest
- अभिरुचि

दिलीप चित्रे द्वारा सृजित पेंटिंग्स

संदर्भ

https://mr.wikipedia.org/s/e5i
hindi.webdunia.com/
चित्र साभार गूगल

'भंसाली' के आगे 'बादशाह' हुए डवाँडोल ...... बॉक्स ऑफिस चाहे कुछ भी कहे !!!

समीक्षा

अद्भुत (रचनात्मक) लड़ाई की पृष्ठभूमि उस वक्त तैयार हो गई थी जब लोगों के कानों तक यह खबर पहुँची थी कि बॉलीवुड के बादशाह ("दिलवाले") से संजय लीला भंसाली की "बाजीराव मस्तानी" टकराने वाली है. शाहरुख के प्रशंसकों को अपने किंग पर भरोसा था, उन्हें "दिलवाले" के निर्देशक रोहित शेट्टी पर कम ऐतबार था; पर संजय लीला भंसाली के प्रशंसकों को तो अपने निर्देशक पर ही भरोसा था.....! यह पता होने के बावजूद की शाहरुख के कद के आगे रणवीर सिंह कुछ नहीं हैं, भंसाली की क्षमता से वाकिफ लोग इस बात को लेकर आश्वस्त थे कि यह निर्देशक रणवीर से भी ख़ास करवाकर उसे भी ख़ास बना ही देगा. 17 दिसम्बर फैसले की घड़ी थी....... दो बड़े धुरंधरों के टकराव में (शाहरुख बनाम संजय लीला भंसाली) दर्शकों की तो चांदी ही थी.

अच्छे सिने प्रेमी तो दोनों से सर्वोत्तम की आशा कर रहे थे ताकि दो अच्छी फ़िल्मों को देखने का आनंद वे लूट सकें पर....... भंसाली की आंधी के सामने शाहरुख की बादशाहत और रोहित शेट्टी की हवा में उड़ती, उछलती-कूदती, ज़ूम-ज़ूम की आवाज़ से रोमांच पैदा करती गाड़ियां धूल-धूसरित हो

गई. रोहित शेट्टी दिलवाले में शाहरुख-काजोल से कुछ नहीं करवा पाए पर भंसाली ने बाजीराव-मस्तानी में रणवीर-दीपिका से सब कुछ करवा लिया जो एक फ़िल्म को दमदार बनाने के लिए काफी था. रोहित शेट्टी ने काजोल की उपस्थिति का भी फायदा उठाने से खुद को वंचित कर लिया. बेहतरीन स्टार कास्ट होने के बावजूद एक सामान्य से कथ्य की घिसी पिटी अंदाज में प्रस्तुति, ज़बर्दस्ती दर्शकों को बचकाने रूप में हँसाने की चेष्टा, बड़े-बड़े अभिनेताओं (बोमन इरानी,संजय मिश्रा) की बेहतरीन क्षमता को भी तहस-नहस कर देने की कोशिश रोहित शेट्टी के निर्देशकीय क्षमता और फ़िल्मी समझ पर प्रश्न चिन्ह लगाती है.

> “चीते की चाल, बाज़ की नज़र, बाजी राव की तलवार और भंसाली की फिल्म पर संदेह नहीं करते, कभी भी मात दे सकती है.”

यद्यपि मसाला फ़िल्मों के इस दौर में बहुत हद तक संभव है कि रोहित कमाई कर लें पर फ़िल्मी लिहाज से यह फ़िल्म बहुत ही कमज़ोर और बिना मेहनत के बस बजट के दम पर तैयार कर दी गई एक फिल्म है जो बड़े-बड़े नाम के सहारे दर्शकों के दिलों में घुसने के लिए प्रयत्नशील है। वही दूसरी और "बाजीराव मस्तानी" में वह सब कुछ है जिस पर पूरे मनोयोग से बातचीत की जा सकती है. रणवीर सिंह, दीपिका पादुकोण का उम्दा अभिनय, प्रियंका चोपड़ा का सहनायिका के तौर पर ज़बर्दस्त सहयोग, बाजीराव की माता के तौर पर तन्वी आज़मी, बाजीराव के भाई के तौर पर वैभव तत्वावदी, छत्रपति साहू के रूप में महेश मांजरेकर, प्रतिनिधि के रूप में आदित्य पंचोली, मिलिंद सोमन आदि सबने अपनी भूमिका के साथ इन्साफ करने में कामयाबी हासिल की है. भंसाली ने उस छोटे से बच्चे से भी बखूबी उसका किरदार सफलतापूर्वक अदा करवा लिया है जो शमशेर (बाजीराव और मस्तानी का

अभिषेक त्रिपाठी
+91 9623278236
pingaakshaa@gmail.com

छोटा सा पुत्र) की भूमिका में है. भंसाली के सेट, सौन्दर्य की समझ और उसकी प्रस्तुति के अंदाज़ पर शायद ही किसी को संदेह हो (भंसाली ने अनेकों बार अपनी इस दक्षता को साबित किया है), इस फ़िल्म में भी वह सब एक ख़ूबसूरत रूप में है और जो भंसाली के अद्भुत मेहनत की गवाही दे रहा है.

Baajirao Masataani

Directed by
Sanjay Leela Bhansali

Writing Credits
Nagnath S. Inamdar
(novel: Rau)

Sanjay Leela Bhansali
(additional writer)

written by
Prakash Kapadia

Dilwaale

Directed by
Rohit Shetty

Writing Credits

Yunus Sajawal ...
(screenplay)

Farhad &Sajid ...
(dialogue)

नृत्य संगीत, कैमरा आदि हर दृष्टि से इस फिल्म में किया गया कार्य पूरे फ़िल्म के दौरान दृष्टिगोचर होता है और फ़िल्म को ख़ूबसूरत बनाता है. फ़िल्म में चले कलम की धार और विशिष्टता को साबित करने के लिए बाजीराव मस्तानी के कुछ संवादों को यहां प्रस्तुत करना ज़रूरी है-

- "योद्धा हूँ, ठोकर पत्थर से लगे तभी हाथ तलवार पर ही जाता है" "ये धरती, ये आसमान और सीने की आग को साक्षी मानकर हम आपको क़ुबूल करते हैं !"
- "तुझे याद कर लिया है आयत की तरह, अब तेरा जिक्र होगा इबादत की तरह."
- "निशाना चुका नहीं है बस रिश्ता बीच में आ गया है."
- "लगाम दिखती नहीं है, पर जुबान पर होनी चाहिए"
- "किसकी तलवार पर सर रखूँ यह बता दो मुझे, इश्क करना अगर खता है तो सज़ा दो मुझे।"
- "जो तूफानी दुनिया से बगावत कराये वो इश्क, भरे दरबार में जो दुनिया से लड़ जाए वो इश्क, जो महबूब को देखे तो खुदा को भूल जाए वो इश्क"
- "हीर में हीरा तो उसे कहते हैं कोहिनूर राव का नाम लेते ही काशी के चेहरे पे आता है नूर."
- "चीते की चाल, बाज़ की नज़र और बाजी राव की तलवार पर संदेह नहीं करते, कभी भी मात दे सकती है."
- "बाजीराव की रफ़्तार ही बाजीराव की पहचान है."
- "बाजीराव ने मस्तानी से मोहब्बत की है ऐय्याशी नहीं."
- "आप हमसे हमारी ज़िंदगी मांग लेते हम आपको खुशी खुशी दे देते, पर आपने तो हमसे हमारा गुरूर छीन लिया."
- "आंधी रोके तो हम तूफ़ान, तूफ़ान रोके तो हम आग का दरिया, ये शपथ है बाजीराव बल्लाल की......"

इन संवादों को प्रस्तुत करने का दायित्व जिन अभिनेता, अभिनेत्री के ऊपर था उन्होंने संवाद की गति, शब्द के वजन और प्रस्तुति के लिए आवश्यक ऊर्जा और ठसक को बखूबी समझा; नतीजतन संवाद रजत पटक पर जीवंत हो उठे और दर्शकों के मानस में अमर ! दीपिका, प्रियंका के अभिनय क्षमता को लेकर संदेह पहले से भी नहीं था इसलिए उनके द्वारा किया गया उम्दा प्रदर्शन बहुत ज़्यादा आश्चर्यचकित नहीं करता (क्योंकि दोनों ही बेहतरीन अदाकाराएँ हैं) परन्तु रणवीर सिंह का काम निश्चित तौर पर उनके अभिनय में आये परिपक्वता की तारीफ़ के लिए विवश करता है. रणवीर सिंह ने जिस ऊर्जा के साथ बाजीराव के चरित्र को निभाया है, वह उन्हें स्टार की श्रेणी में शामिल कर रहा है. इतनी बातें कहने-सुनाने का निचोड़ यही है कि भंसाली ने स्टार (रणवीर सिंह) पैदा कर दिया और रोहित स्टार्स को ले डुबे.......!!!!!

बाजीराव मस्तानी को लेकर विवाद करने वालों के लिए सन्देश- "फ़िल्म फ़िल्म होती है भले वह सत्य घटना पर बने या आभासी घटना पर ! उसका निर्देशक उसे सजाने, संवारने और अपने कलात्मक दृष्टिकोण से सींचने की कोशिश तो करेगा ही ! काहे आप लोग मरे जा रहे हैं !!! इस फ़िल्म का शुक्रिया अदा कीजिये जिसने बाजीराव के नाम को अब जन-जन तक पहुंचा दिया !!!"

बाजीराव मस्तानी:दास्तान-ए-प्रेम

समीक्षा

बाजीराव ने मस्तानी से मोहब्बत की है, अय्याशी नहीं... यह संवाद फिल्म के निर्देशक संजय लीला भंसाली पर भी लागू होती है। संजय ने भी सिर्फ एक फिल्म नहीं बनाई, बल्कि सिनेमा के प्रति अपने बेइंतहा मोहब्बत को बहुत सलीके से पर्दे पर उतारा है। इस फिल्म के बारे में संजय ने एक साक्षात्कार में कहा था कि यह महज फिल्म नहीं है, यह एक तपस्या है। फिल्म के 158 मिनट जब आंखों के सामने से गुजरते हैं तब वाकई यह लगता है कि हम 18वीं सदी में चले गए है। महाराष्ट्रीय संस्कृति आकर्षक रंगों में पर्दे पर उभरने लगती है। बाजीराव मस्तानी का विशाल सेट, सजीव सिनेमेटोग्राफी, काव्यात्मकता संवाद और इतिहास के रंगों में रंगे किरदार इतने शानदार हैं कि आप विस्मित हुए बिना नहीं रह सकते।इसे देख कर लगता है कि भंसाली अपनी पिछली फिल्मों से काफी आगे निकल आए हैं। इतिहास, परंपरा और प्रेम को बिना किसी छेड़-छाड़ और बनावटीपन के एक कहानी में पिरोना और फिर उस पटकथा को कैमरे की खुबसूरत नजर देना....किसी करिश्मे में कम नहीं है। इतिहास के पन्नों से सैकड़ों साल पुरानी कहानी को प्रेम कहानी बनाने में भंसाली ने बड़ी ही बारीकी से काम किया है। फिल्म के सेट मसलन वाड़ा, महल,युद्ध के मैदान का निर्माण और फिल्मांकन प्रभावित करती है। पेशावकालिन वास्तुकला, युद्धकला, वेशभूषा, सामाजिक आचरण, व्यवहार, राजनीति और पारिवारिक मर्यादाओं को कहानी में बखूबी शामिल किया गया है। सबसे बड़ी बात इनके फिल्मांकन में वास्तविकता और भव्यता के बीच बेहतर तालमेल स्थापित करने की कोशिश की गई है। यही वजह है कि इस भव्यता के बीच भी एक सादगी नजर आती है। तड़कता-भड़कता कुछ भी नजर नहीं आता। बस यही बात आंखों को सुकून देती है।

फिल्म इतनी खूबसूरत और शानदार है कि कमियां नजर आती ही नहीं है। पर कुछ बाते खटकती हैं।

फिल्म की पटकथा इतिहास में लिपटी एक ऐसी प्रेमकथा पर टिकी है जो धर्म या मजहब की दीवार से टकराती है और इसी टकराहट से षड़यंत्र जन्म लेता है। कहानी अठारहवीं सदी की भारतीय राजनीति के अपराजेय मराठा नायक बाजीराव पेशवा और मस्तानी के इर्द-गिर्द घूमती है। युद्ध के दौरान बाजीराव और बुंदेलखंड की बहादुर राजकुमारी मस्तानी के बीच इश्क हो जाता है। बाजीराव अपनी कटार मस्तानी को भेंट करता है। बुंदेलखंड की परंपरा में कटार देने का मतलब शादी करना होता है। पर बाजीराव अपने बचपन की दोस्त काशीबाई के साथ शादी कर चुके हैं। मस्तानी की वजह से बाजीराव की मां नाखुश होती है। वह मस्तानी का तिरस्कार और अपमान करती हैं। इसके पीछे सबसे बड़ी वजह उसका मुसलमान होना होता है। इन सब के बीच बाजीराव मस्तानी को पत्नी का दर्जा देना चाहते हैं। रिश्तों के इस कशमकश में तत्कालीन समाज और सोच दिखती है। फिल्म प्रेम के माध्यम से राजनीतिक और सामाजिक रीतियों पर प्रहार भी करती है। और फिर यहीं से एक द्वंद्व शुरू होता है जिसका असर कई जिंदगियों पर पड़ता है। कहानी के दोनों किनारों पर दो महिलाएं है और बीच में एक पुरुष है- बाजीराव, मस्तानी और काशी। बाजीराव ने मस्तानी को चाहा है और वो भी बाजीराव को उसी जज्बे से चाहती है। और काशी... वह क्या करे? वह भी बाजीराव से प्रेम करती है पर मस्तानी से कैसा संबंध ऱखे? उसे स्वीकार करे या अस्वीकार? अस्वीकार किया नहीं जा सकता और स्वीकार करना कठिन है। काशी दोनों के बीच झूलती है। इन्हीं और ऐसे ही कई जज़बाती किनारो को छूती बाजीराव मस्तानी मानवीय भावनाओं के कई पहलुओं को दिखाती है।

रुद्रभानु प्रताप सिंह

Mumbai

फिल्म के मुख्य कलाकार प्रियंका चोपड़ा, दीपिका पादुकोण और रणवीर सिंह ने अपने किरदारों को बखूबी जिया है। निर्देशक की सूझबूझ से हर किरदार में आवश्यक गहराई और गंभीरता है। युद्ध के

मैदान में रनवीर की ऊर्जा देखने को मिलती है। उनकी घुड़सवारी, तलवारबाजी और आक्रामकता में जरा भी बनावटीपन नजर नहीं आता है। सेनापति के रूप में उन्होंने अपने किरदार के साथ न्याय किया है। उनकी सराहना इस रोल को स्वीकार करने के लिए भी की जानी चाहिये। फिर भी कुछेक बातों जो फिल्म में खटकती हैं, वो भी रनवीर से ही ताल्लुक रखती हैं। जैसे कई बार उनका अभिनय काफी नियंत्रित लगता है और कई जगह वह अपने चरित्र से हटते भी दिखाई देते हैं। प्रियंका चोपड़ा की भूमिका संयमित है। कुंठा, गुस्से और हताशा के भाव में वह दिख कर भी छिप-सी जाती हैं। इसकी वजह यह है कि प्रियंका चोपड़ा के किरदार काशीबाई के लिए अधिक स्पेस नहीं है। पर अपनी सीमित उपस्थिति में ही प्रियंका प्रभावित करती हैं। दीपिका पादुकोण ने इस फिल्म में अपने को साबित किया है। वीरांगना और माशूका के भावों को उन्होंने खूबसूरती के साथ पेश किया है। जब मस्तानी अपने बच्चे को साथ लेकर युद्ध करती है तब किसी शेरनी की तरह लगती है और जब बाजीराव से मोहब्बत करती है तब खूबसूरती और नजाकत की देवी लगतीहै।

***निर्देशक-संगीत :* संजय लीला भंसाली**
***निर्माता :* किशोर लुल्ला, संजय लीला भंसाली**
***पटकथा :* प्रकाश कपाड़िया, संजय लीला भंसाली, मल्लिका दत्त घारड़े**

सबसे बड़ी बात यह है कि फिल्म इतनी खूबसूरत और शानदार है कि कमियां नजर आती ही नहीं है। पर कुछ बाते खटकती हैं। जैसे इंटरवल के बाद कहानी में कोई खास बदलाव नहीं होने की वजह से यह कहीं-कहीं कुछ पलों के लिए थोड़ी बोर भी होने लगती है।एक और बात सवाल पैदा करती है कि लगातार चालीस लड़ाइयां जीतने वाले महान योद्धा की वीरता दिखाने के लिए सिर्फ एक युद्ध का फिल्मांकन क्यों ? निर्देशक के पास इन सबके लिए कई मौके भी थे। प्रतिनिधि (आदित्य पंचोली) की चालें क्या केवल दो ही दृश्यों तक सीमित रहनी चाहिये थीं? क्योंकि किसी भी राज-पाट में षणयंत्रों-चालों की पूरी-पूरी गुंजाइश होती है। बावजूद इसके 158 मिनटों में भंसाली ने अपने दर्शकों को पर्दे पर जो जादू दिखाया है उसे देखकर यही कहना सही होगा कि भंसाली ने फिल्म नहीं बनाई बल्कि 'बाजीराव मस्तानी' से मोहब्बत की है।

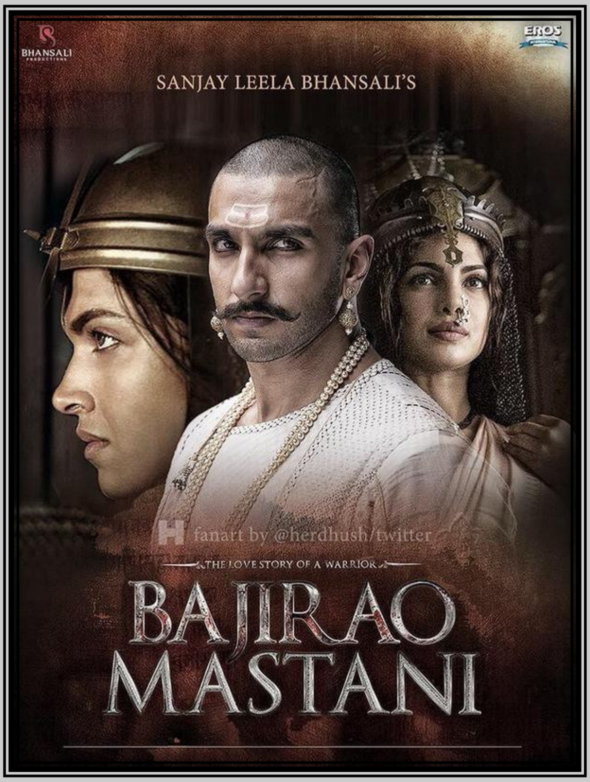

Linguistic Relativity Revisited: A Cognitive Linguistic Approach to Translation Studies

शोध

This paper will explore the role of cognitive linguistics in shaping translation studies.

Sanjukta Ghosh

The issue of translation and culture are intricately connected. However, the theoretical frameworks of translation studies (either from literature or from linguistics) has not paid due attention in theoretically incorporating cultural studies in it. Even such a fundamental question like the relation between language and culture has not been resolved in the translation theory. The paper discusses different versions of linguistic relativity hypothesis and the modern interpretation of the hypothesis in a particular school of Linguistics known as Cognitive Linguistics. Cognitive Linguistics holds the view that meaning is conceptualization. In case of translation and the most-talked translation equivalence, it is then equivalence of two conceptualizations (Tabakowska 1993). Cognitive linguistics can provide insights to understand translation as a process by focusing on the cognitive processes involved in the 'how' and 'why' of translation. It can also be helpful in answering theoretically such big questions as whether a translation is ever be possible to create similar effect on the TL readers or not, how to evaluate a translation work as a cultural construct of the TL. This paper will explore the role of cognitive linguistics in shaping translation studies.

1. Introduction

1. Necessity is the mother of Invention.

   Proyojoni abiSkarer jOnoni. (Bangla Tr)

2. He wants his girlfriend to mother him.

   O premikake ma banate cay. (Bangla tr)

In the above two sentences, though the same word mother is used in English, we get two different words in the translated texts into Bangla. viz., jOnoni and ma. Why two different words are used for these two sentences in Bangla translations, why can't Bangla use the same word for both?

When an English speaker says girl, do all the senses of the word are captured by a single word laRkii in Hindi? Is our concept of a word moulded by our culture? What is the role of cognition in translation? What is the interrelation between cognition and communication especially in the context of translation? This article raises and answers questions like this.

The article is an attempt to connect language, culture, cognition and communication in the context of a process called translation.

The article is divided into three main sections apart from an introduction and a conclusion. The second section discusses the linguistic relativity hypothesis and its consequences in forming translaion theory. The third section introduces and dis-

cusses the basic assumptions of cognitive linguistics and especially the approaches to study senses of a word within cognitive semantics. The fourth section discusses the cognitive approach of translation.

2. Linguistic Relativity Hypothesis

2.1 Strict version of Linguisic Relaivity Hypothesis

In the third and fourth decades of twentieth century a teacher-student duo Benjamin Sapir and Lee Whorf throughout their writings tried to work out the relation between language, thought and culture. As a result of these works, a particular hypothesis is put forward by the researchers in Linguistics known as Linguistic relativity Hypothesis, better recognized as Sapir-Whorf Hypothesis in the academic world. Though neither Sapir nor Whorf explicitly expressed this in a form of hypothesis, researchers found from their writings two different versions of the hypothesis.

According to stricter version of Linguistic relativity hypothesis (Sapir-Whorf hypothesis) language determines thought and linguistic categories limit and determine cognitive categories. As a result of it, if one does not have a word in the language one cannot even perceive it. Sapir was the proponent of this strict version of the hypothesis. He was influenced by the work of Humboldt who wrote about hundred years before Sapir that "Man lives in the world about him principally, indeed exclusively, as language presents it to him" (Humboldt 1841-52) That is to say the world in which we live is a construct of the language we speak. Therefore, our reality and culture are mostly, may be exclusively (as the bold-faced words say) consructed by our words. This may be considered as the seed of the stricter version of Sapir- Whorf hypothesis. In his book "The Status of Linguistics as a Science", Sapir writes

"No two languages are ever sufficiently similar to be considered as representing the same social reality. The worlds in which different societies live are distinct worlds, not merely the same world with different labels attached." (Sapir 1929)

According to Sapir, our percepion of the world, even for a very simple act like hearing and seeing, depends entirely on our inheritence of a language in a society and therefore how our experience will be constructed is also not in our hands but predetermined by the language habits of the society where we live. In other words, our language guides us entirely and exclusively to construct our reality and experience. Human beings are unconscious of how they construct their world around.

2.2 Weaker version of the hypothesis

Sapir's student Whorf is responsible for a weaker version of Linguistic Relativity hypothesis. According to this version, linguistic category and usage influence thought and certain kinds of non-linguistic behaviour. Whorf states that the construction of the reality by the human being is done through a fundamental cognitive process of categorization of the experience. This categorization is influenced by our linguistic behaviour as part of a speech community. We are bound to follow an implicit' but 'obligatory' agreement to organize our experience and reality. In Whorf s own words, "The world is presented in a kaleidoscopic flux of impressions which has to be organized by our minds-and this means largely by the linguistic systems in our minds. We cut nature up, organize it into concepts, and ascribe significances as we do, largely because we are parties to an agreement to organize it in this way-an agreement that holds throughout our speech community and is codified in the patterns of our language. The agreement is, of course, an implicit and unstated one, but its terms are absolutely

obligatory; we cannot talk at all except by subscribing to the organization and classification of data which the agreement decrees." (Whorf 1940)

Since the publication of these works, a number of studies have been done to support or refute this hypothesis. It is really difficult to support the strict version of the hypothesis where language exclusively determines one's cognitive and cultural constructs. This leads to this extent that no thought is logically possible without language. That means if a language does not have a word for something the speakers cannot even think of that thing. In other words, concept without language is impossible to construct. This questions the possibility of creating neologism in a language. A new word is created in a language only after the creation of a concept associated with it.

This also excludes possibility of pre-linguistic thoughts in babies. Translation is impossible according to this version because no two languages have similar linguistic construct and as a result cultural constructs also differ from one language to another. Therefore, two linguistic societies live in two mutually unintelligible worlds. But successful translation is a reality except in some cases like metaphors, jokes and idioms.

There are also some scholars who discard this hypothesis altogether on the ground that translation across culturally distant languages can also be done; therefore, the languages share same reality or languages do not determine the cultural constructs.

The weaker version has got much attention among the cognitive psychologists and cognitive linguists. In the late 1980s and early 1990s, with the emergence of Cognitive linguistics Sapir-Whorf hypothesis is revisited and it has favoured the weak version drawing support from empirical works especially in metaphor studies (Lakoff 1987). Lakoff distinguishes between conceptual systems and the ability of human being to conceptualize something even if there is no word present in her language to express it. As a result, translation across languages does not entail that languages share same conceptual system. Translation and understanding are two different processes. There could be understanding of some concepts without translation or translation without understanding the concepts.

A language may not have a word for certain concepts related to some other cultural domain and language but it can always be expressed through a phrase. Pullum in his The Great Eskimo Vocabulary Hoax (1991) showed the same while challenging the most-cited example of Eskimo snow words given by Whorf. In a highly snow-dependent culture like the Eskimos here may be 22 words to describe snow but it is possible to express all those words through phrases in a less snow-dependent language.

In a very influential study on colour perception, Berlin and Kay (1969) found 11 colour foci are recognized universally by every language speaker even if the speakers do not have names for all those colours in their languages. This again supports the view of cognitive linguistics that cognizing something by a language speaker is different from the conceptual system of that speaker. The conceptual system is expressed through one's language. Therefore, one language may have just two colour terms (one for expressing all dark colours and one for expressing all light colours) and another has all 11 basic colour terms associated with the universal colour foci. However, their capability of understanding the differences among the basic foci colours remains same. What comes up as a result of all the scholarly works on and related to Relativity is organization and caegorization of our experiences are influenced by the language we speak. So, two languages may be associated with two conceptual systems varying radically to moderately. However, we share some basic cognitive ability to perceive something not necessarily expressing it through language.

In the next section, I will elaborate the basic assumption of cognitive linguistics especially cognitive semantics developed through the works of many scholars in last three decades. How linguistic relativity is analyzed in this discipline would be the focus of this description.

3. Cognitive Linguistics: An overview

3.1 Basic Assumptions of Cognitive Linguistics

Cognitive Linguistics was developed in 1970s and 80s as an enterprise by a group of scholars who were dissatisfied with the formal schools of languages. It grew up as a discipline in 90s with a group of researchers in both Europe and USA influenced by the works already going on in the disciplines of cognitive science especially cognitive psychology.The discipline is also shaped by the works on neural bases of language and cognition from the beginning to more reccen works.

Cognitive Linguistics is based on three basic assumptions. First, there is no separate language faculty required to explain language, rather, the general cognitive ability of human beings can explain every phenomenon of language. Language structure whether grammatical or lexical can be analyzed in terms of some language-independent cognitive structures. This is a view radically different from Chomskyan generative discipline because generative grammar starts with the assumption of a Language Acquisition Device (LAD) existing in the brain of every human being.

Second, meaning of a word is the conceptualization of the word by the speaker. This is a sense-based theory of semantics differing from the reference-based Truth-conditional theory of semantics predominant in the field of linguistic semantics. The logic-based truth-conditional theory of semantics assumes that meaning of a higher unit (a phrase or a sentence) is the function of the meaning of its component parts and how they are constructed, i.e, meaning is compositional in nature. On the contrary Cognitive Semantics is what may be called decompositional in nature. In decompositional semantics, one tries to analyze grammatical and lexical structure in terms of some intuitive cognitive structure. In order to do this, one needs to understand a linguistic structure at some deeper level analyzing it into its components and then mapping the linguistic structure onto some familiar cognitive structure.

Third, knowledge of language emerges from language use which groups Cognitive Linguistics with other functional schools of linguistics. This view is opposed to the reductionist tendencies of the generative grammar and truth-conditional semantics in which maximally abstract and general representations of grammatical form and meaning are sought and many other grammatical and semantic phenomena are considered to be peripheral.

There are two major commitments of cognitive linguistics enterprise: Generalization commitment and Cognitive commitment (Evans et al 2006). Generalization commitment seeks a more general descriptive approach for all levels of linguistic analysis; from Phonology to Semantics and Pragmatics as well as in other applied linguistics fields. This is an outcome of the first assumption of cognitive linguistics described above and claims that every linguistic phenomenon can be understood in terms of some general cognitive principles.

The second commitment represents that linguistic phenomena are understandable in terms of some general cognitive and neural principles known from the studies in other disciplines like Cognitive Psychology, Philosophy, Artificial Intelligence and Neurology. The consequences of this commitment are found in each field of language study from Phonology to Semantics. The second assumption discussed above is a direct consequence

of this commitment which understands meaning of a word as the way the word is conceptualized by the speakers of that language. It also follows from this commitment that the analyses of language which follow the known properties of human cognitive systems are more adoptable and welcome in cognitive linguistics rather something which does not conform to the findings of other neuro-cognitive disciplines. This makes the Cognitive Linguistics 'cognitive'.

With this introduction of fundamentals of cognitive linguistics I move to the next section directly relevant for understanding the cognitive view of translation. The next two sections discuss the basic assumptions of cognitive semantics which have been particularly useful in understanding and translating a text.

3.2 Cognitive Semantics and Categorization of concepts

As mentioned in the last section, Cognitive Linguistics uses and prefers models based on some general cognitive mechanism to understand phenomena of language. The theory of meaning in cognitive linguistics is based on 'categorization', a very basic well-understood cognitive process of human beings. Therefore, a semantic theory is developed in cognitive linguistics based on this process of categorization.

The concept of classical Aristotolean categorization in terms of set inclusion is challenged in this enterprise. Classical categorization is based on the assumption that some 'necessary and sufficient' conditions are needed to be part of a set or a category. This idea of categorization was first questioned in the work of Wittgenstein (1959) known as 'game theory' in Philosophy of language. Later in Cognitive Psychology, Rosch and her co-workers (Rosch, 1975, 1977, 1978; Rosch & Mervis, 1975; Rosch et al., 1976) proposed 'prototype' effect in the concept of categorization. 'Prototype' is an abstract mental representation of a category with those properties or attributes which best describe that category. Their major finding from a series of experiments conducted in 1970s and early 80s with different language and cultural groups suggest that some members of a category have been ranked higher over other members based on Goodness-of-Exempler (GOE) rating. If category is formed in terms of strict set inclusion then it would not be possible as all members would have got the same status within a category. Therefore, in cognitive model of meaning, categorization is not an objective language-independent phenomenon. Rather, it is a process influenced by one's language relating cognition and language. If we make a cognitive model of meaning based on the famous triangle of meaning given by Ogden and Richards, it would look like the following.

COGNITION

/ / \ \

Categorization Perception

/ \ / \

LANGUAGE ------ WORLD

This explains the linguistic relativity example given earlier that a language with 11 focal colour terms and a language with just 2 differ only in the way they categorize the colour spectrum using language. However, their perception of the world with colours remains same.

In the process of translation, the first step is to interpret the source language text. The interpretation of a text needs a thorough deciphering of the text. The meaning of a word may be understood in terms of some radial structure, with some core and some peripheral meanings. The core meanings are more basic and are ex-

pected to be constant across the languages. The peripheral meanings are language-dependent and have to be handled separately for a pair of languages.

What Rosch suggested as the prototypical theory has been taken forward by Lakoff to develop a cognitive theory of representation to explain the prototypical effect. Lakoff in his 1987 work on categories proposes that we organize our knowledge by means of structures known as Idealized Cognitive Models (ICM). He (Lakoff 1987) argues that an ICM is responsible for a prototype effect. ICMs are developed by one's cultural and social background. The prototypical meaning and non-prototypical meanings associated with a word can be explained with reference to an ICM connected to that word. For instance, we can explain this with Lakoff s example of 'mother'. In English, the prototypical meaning of 'mother' includes all of the following characteristics. Mother is a female who gives birth to a child giving her own egg, nurtures the child staying at home and married to the father of the child. Only in contrast to this notion of 'mother', other compounds formed with 'mother' but do not fulfill all of the above concepts of mother are understood. These are 'unwed mother', 'working mother', 'foster mother', 'surrogate mother', 'adoptive mother', 'step-mother' etc. In the metaphorical uses of mother also, two most significant aspects of motherhood giving birth and rearing the child are emphasized and sometimes the birth model (as in (1)) and sometimes the nurturing model (as in (2)) of mother is used.

1. Necessity is the mother of Invention.
2. He wants his girlfriend to mother him.

Lakoff suggests that one of the reasons for prototypicality effect is the mismatch of ICM. Mismatch of ICM also leads to a wrong equivalent in translation. For instance, in languages like Bangla and Hindi there are more than one word derived from Sanskrit for English mother. However, they are not completely synonymous. They focus on different aspects of meaning which are associated with the English word mother. For instance, only the child-bearing role of mother is associated with the word jananii (literally who has given birth), therefore, we have jananii surakshaa yojanaa not maa to secure the life of a child-bearing mother. The child-rearing role is associated with the word maa. Therefore, the correct equivalent of mother in the sentence (1) is jananii but in (2) is maa.

3.3 Conceptual Approach to Cognitive Semantics

Cognitive Semantics, as I mentioned before, starts with the assumption that meaning of a word is its conceptualization. Certain concepts belong together because they are associated in experience. So there is a need for organizing concepts which led to notions such as frame (Fillmore 1975), domain, schema (Langacker 1987, 1991), space (Fauconnier 1985).

Lakoff 1987 states that 'each ICM is a complex structured whole, a gestalt, which uses four kinds of structuring principles'.

1. Propositional structure as in Fillmore's Frame
2. Image-schematic structure as in Langacker's cognitive grammar
3. Johnson and Lakoff s metaphoric mappings
4. Johnson and Lakoff s metonymic mapping

He also adds to it that each ICM when used also evokes a mental space as described by Fauconnier.

Fillmore stated that a word or a construction evokes a frame which the hearer must capture to understand it. For example, take the words girl, woman, man, boy. To understand these concepts not only biological sexual distinctions but also the whole arrays of social facts play a crucial role. For instance, the appropriate translations in Bangla for the word girl in the following sentences will be three different words. For sentence (1), it is paatrii 'a marriagable girl', in sentence (2) it is a phrase in day-to-day use baacchaa meye 'a small girl' and in sentence (3), it is premikaa 'female lover'. Therefore, a single word in English evokes three different frames in Bangla associated with three different words.

1. We need a suitable girl for our son.
2. A girl is playing in the garden.
3. His girl has deceived him.

In Cognitive grammar a domain is a semantic structure that functions as the base for at least one concept profile (typically many). It is similar to Fillmore's frame. The radius is defined in terms of a circle, circle is the domain or base and radius is one of the concept profiles.

Image-schemas are conceptual constructs of our perceptions of the world in terms of some spatial structures. They are mappings of the conceptual domains onto the some spatial structure. Some image-schemas listed by Johnson (1987) are like the followings: Container-contained, Mass-count, Link, Central-periphery, (source)-path-(goal), Near-far, Part-whole etc.

Fauconnier replaces the notion of possible world with the notion of mental space and argues mental spaces are cognitive structures.

1. He bought a house.

2.1 believe that he bought a house.

3. He wants to buy a house.
4. He will buy a house.
5. If he buys a house, then he will throw a party.

The first utterance is an event in a base space and all there utterances build some new space by some kind of space builders and relate the base space and new space.

Mental space theory illustrates how utterances evoke not just domains or frames but also spaces representing the status of our knowledge (belief, desire, hypotheticals and counterfactuals) relative to reality, how language use links between different spaces in referring to individuals and knowledge can float between spaces.

With this introduction of the basic tenets of cognitive linguistics especially cognitive semantics I will move to the next section which will be particularly on applying this in the domain of translation.

4. Cognitive approach to translation

There have been studies on understanding translation as a process with the knowledge of cognitive linguistics in last twenty years. Not only in the field of literary translation and metaphor studies (Tabakowska 1993, Mandelblit 1995) where cognitive linguistics insights may be extremely useful but also a cognitive approach of machine translation has been tried (Mandelblit 1993). The cognitive theory of translation is based on the basic assumption of cognitive semantics: Meaning is conceptualization. Therefore, transfer of meaning from one lan-

guage to another is actually a transfer of concepts of one language to the similar concepts in the other. The hypothesis is that more two languages are closely associated culturally better the translation is between them. The polysemous meanings of a word can be associated with different image-schemas in a language and understanding the meanings will be evoking the right image-schema. While translating the senses in TL the translator has to find out right image-schemas associated with that word in that language. Two languages not necessarily share similar image-schemas. Here comes the linguistic relativity, more two languages are culturally similar more they share same kind of image-schemas.

Let us explain this with a concrete example. Take a very common verb of Hindi aanaa 'to come'. The core meaning associated with the verb is a movement towards the speaker. This may be represented as a source-path-goal schema where the source sometimes may be present in the background as in musiibat aanaa 'calamity befall'. In translation of this verb into Bangla and Bhojpuri the same image-schema is retained for the central sense of the word. However, in Bangla the verb may also be used in the sense of 'leaving' or going from the place of the speaker. This use is specific to eastern Indian culture where aanaa is attached to more positive sense. The addressee=centric path schema is also very common in Bangla and Bhojpuri which is considered to be an eastern Hindi variety but not in standard Hindi. The other main schema this verb evokes is container-contained schema as in the following sentences.

1. Isme aa jaayegaa? 'Will this fit to it'?
2. Mujhe kar calaanii nahiiM aatii haiM 'I do not know how to drive a car.'

This schema though present in Bhojpuri, a culturally closer language to standard Hindi, is not found at all in Bangla. Therefore, a successful translation of the above sentences do not involve the translation of the word literally but understanding the image-schema for this particular sense and finding a right word in the TL which fit with that image-schema.

In the translation theory a lot has been talked on equivalence, whether it is a linguistic theory or literary theory of translation. This more than needed importance of equivalence in translation never gave an opportunity to think translation as a process. Cognitive linguistics opens the possibility of creating translation theory where translation is primarily a process of transfer of senses from SL to TL. Therefore, the whole concept of equivalence in translation is shaken when translation is not viewed as a product. Much colonial debate on the fidelity of translation is no more important in cognitive translation theory. How a word acquires multiple meanings from its uses in the different contexts becomes primary concern of the cognitive theory of meaning. This usage-based meaning go well with the post-colonial view of looking at the meaning of a word as an interaction of the text and the reader (or user of the word in the context of spoken communication). This interactive theory of meaning is also supported by the works of Artificial Intelligence in Cognitive Science (Bickerton). A representation emerges in this theory in the interaction of the participating agents. The meaning of a word similarly emerges out of the interaction of the sign and its users. However, this emergence of meaning also has some constraints which are posed by the text and the reader or the word and its user. The constraints of the reader or the user come from his/her cultural background. No non-cognitive theory is capable to handle such tension between the agents of the representation. The process of translation is one step more after this where a similar re-representation is formed in the TL after interpreting the text of the SL. In this cognitive theory of translation, translator himself/herself is an agent participating in the interaction. Therefore, it allows his/her creativity similar to a writer or a reader. A cognitive theory of translation is capable to answer the questions of 'why and how' of translation.

5. Conclusion

Let us summarize what is discussed so far. A weaker version of Linguistic relativity hypothesis is favoured by Cognitive linguists. Organization and categorization of what a human being can conceptualize is influenced by one's language. However, this does not entail that when a word is not present in a language, the speaker of that language cannot understand the sense of the word also. For understanding the sense of a word, cognitive linguistics postulates some conceptual structures like schemas, frames and spaces which are language-independent and may be used to understand other kind of cognitive abilities of human beings. To interpret the meaning of a word or a text, it is necessary to find out the right cognitive structure associated with it by a translator and then map that structure onto a right word in the TL. In case, a word does not exist in the target language the translation of a cognitive structure is done by a phrase in the TL what we call paraphrase.

Thus a cognitive theory of translation is focused on the process of translation not on the product of it. The big question of equivalence in translation is no more a major issue but the cognitive processes a translator goes through while translating is more important. Some theoretical question like whether a translation is ever be able to produce the same effect on the TL readers can also be addressed through this approach.

21st century is a century for doing inclusive research which is inherently interdisciplinary. Therefore, I propose that it is time now to incorporate the findings of cognitive linguistics to develop a comprehensive and inclusive theory of translation studies including the insights of cultural studies, cognitive science and linguistics.

References

Berlin, B and P. Kay. 1969. Basic Color Terms. Berkeley: University of California Press.

Humboldt, W. 1841-52. Gesammelte Werke. Berlin.

Mandelblit, N. (1995). The cognitive view of metaphor and its implications for translation theory. Transla tion and Meaning, Part 3 (483-495). Maastricht: Universitaire Press.

Mandelblit, N. 2009. Machine Translation: A Cognitive Linguistics Approach, e-book. citeseerX.

Lakoff, George. 1987. Women, Fire and Other Dangerous Things: What categories reveal about the mind. The University of Chicago Press.

Lakoff, George, & Mark Johnson. 1980. Metaphors we live by. Chicago: University of Chicago Press.

Langacker, Ronald W. 1987. Foundations of cognitive grammar, vol 1: Theoretical prerequisites. Stanford: Stanford University Press.

Langacker, Ronald W. 1991. Foundations of cognitive grammar, vol 2: Descriptive applications. Stanford: Stanford University Press.

Pullum, G. 1991. The Great Eskimo Hoax & Other Irreverent Essays on the Study of language. Chicago: Univ. of Chicago Press.

Rosch, E. 1977. "Classification of Real-World Objects: Origins and Representations in Cognition", pp. 212 -222 in Johnson-Laird, P.N. & Wason, P.C., Thinking: Readings in Cognitive Science, Cambridge University Press, Cambridge.

लेखनी

सृजन

प्रेम कभी बंजर नहीं होता

तुम्हें एहसास कराने से
पहले ही
मेरे शब्द मर चुके थे
मरे हुए शब्दों को बटोरकर
यह कहना कितना कठिन है
कि
मैं तुमसे प्रेम नहीं कर
सकता...
सच तो सच होता है
कि
प्रेम महज धोखा है
झूठ तो झूठ ही होता है
प्रेम महज छल है...
अगर तुम्हें झूठ और सच पर
इतना ही यकीं है तो
वाकई दोस्त !
मैं तुमसे सचमुच बहुत प्रेम
करता हूँ।

सच कहूँ तो चुप हूँ !

सब के सब...
मिले हुए हैं ।
नाटक के भी भीतर
एक और नाटक खेला जा रहा है
हम, सब ...
एक साथ छले जा रहे हैं
'क्रान्ति' और 'बहिष्कार'
के इन छद्मी आडंबरों के तलवों
तले।
अभिव्यक्ति के तमाम खतरे उठाते
हुए भी
मैं आज
'नि:शब्द' हूँ
सच कहूँ तो
चुप हूँ
कारण यह.
कि मेरे 'सच' के भीतर भी एक
और 'अदना सा सच' है
कि
'मैं' बहुत 'कायर' हूँ।

पेशावर के बच्चों के प्रति

बच्चों ने नहीं पढ़ी थी
कोई ऐसी 'मजहबी' किताब
अथवा 'धर्म-ग्रंथ'
जिसमें लिखा हो
बम, बारूद अथवा अचानक
अंगुलियों से फिसल जाने वाली
संवेदनहीन, बंदूक की गोलियों की
अंतहीन कथा
ऐसी कोई भी किताब नहीं पढ़ी
थी,
अब तक, बच्चों ने
बच्चों ने नहीं बूझी थी ऐसी कोई
जिहादी-पहेली
ऐसा कुछ भी, नहीं सीखा था
इन बच्चों ने।
बच्चों में बहुत 'भय' था
सिर्फ इसलिए कि
बच्चे जानते थे
कि
वे 'बेकसूर' हैं....

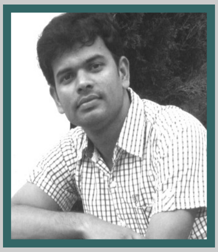

प्रदीप त्रिपाठी
+91 8928110451
tripathiexpress@gmail.com

CREATION

तूलिका

सृजन

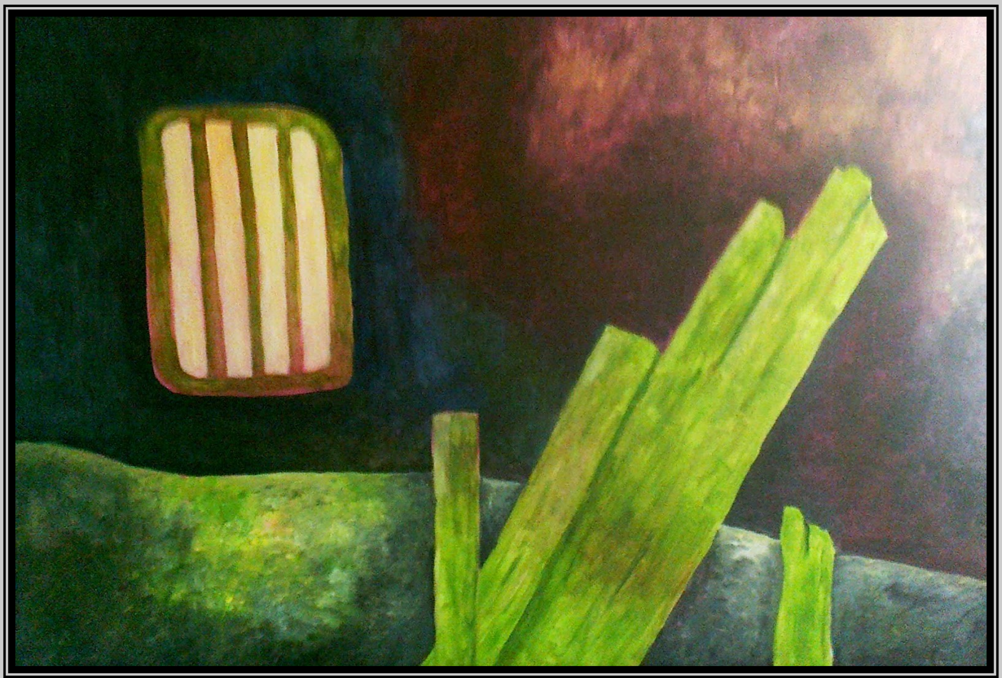

कुंवर रवीन्द्र

CREATION

सृजन

तूलिका

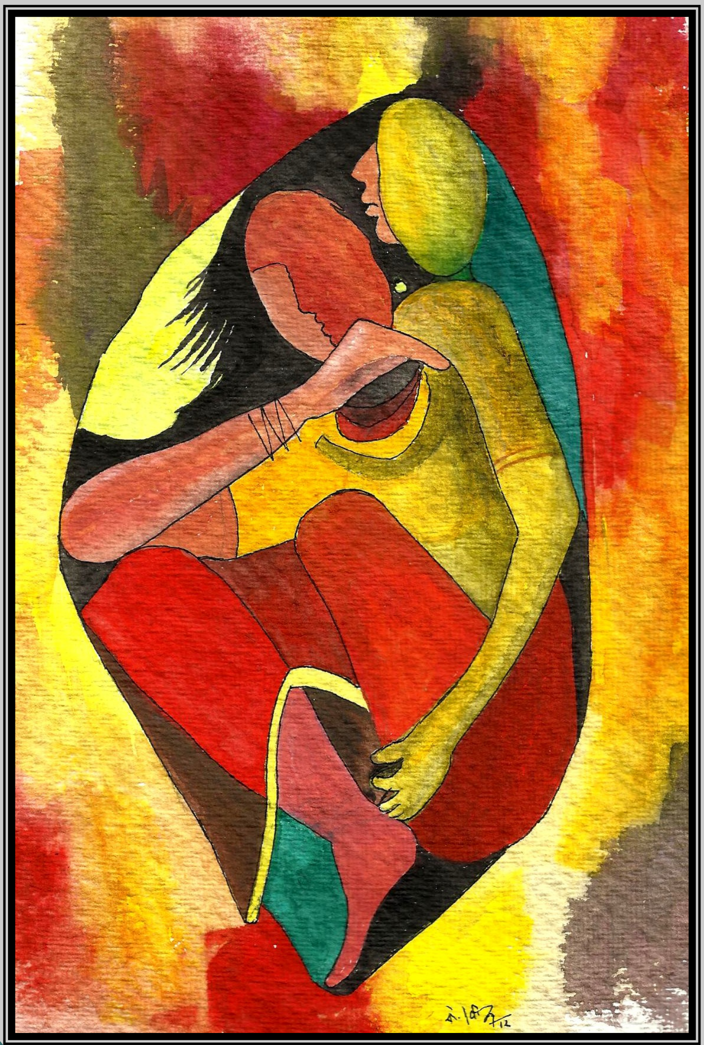

कुंवर रवीन्द्र

ने अब तक १७००० हजार से अधिक रेखांकन और पेंटिग बनाये हैं. उनके कई एकल और सामूहिक 'चित्र – प्रदर्शन' आयोजित हुए हैं. इसके साथ ही वह एक कवि भी हैं. उन्हें पेंटिग के लिए मध्य प्रदेश का सृजन सम्मान और बिहार से कला रत्न सम्मान प्राप्त है.

CREATION

हस्तशिल्प

सृजन

Mamta Kumari

Faculty Of Visual Arts,
Banaras Hindu University

कैमरा

सृजन

Sprite of life

Smile

Soul

NARESH GAUTAM
Wardha, Maharashtra

I feel proud of my Son Shahid Kapoor who is a great Actor and Dancer:

Neelima Azeem

बातचीत

Neelima Azeem a trained Kathak Dancer and Actress who has got Indira Gandhi Awards for her contribution to Indian dance format and mother of famous Bollywood Actor Shahid Kapoor.Here,she speaks to MD.Iqbal Ahmad

tell us about urself..

Ans. I am basically a Kathak Dancer and Actress who has been trained under the guidance of Guru Pandit Birju Maharaj.I have started participating in different forms of dance competion since the age of 10 and also presented India in many countries at the age of 12.I was the younger dancer of the country.

How is your theatre experince?

Ans. Since my school days I used to paerticipate in plays and drama.For this I got many awards also. Theatre makes you strong in the form of acting where no takes are required .I got opportunity to work with NSD Graduates like Habib Tanweer Sahab,Nadira Babbar,Nasruddin Shah,Pankaj Kapoor and many more where I played the central character,in this manner they worked with me,not me .(laughing…..)

Did u get any good opportunity to work in Bollywood?

Ans. I got many offers from the big banners of the Industry since I was good both in dancing and acting so many filammkers contacted me to work in their films as a lead actrees.Satyajeet Ray,Yash Chopra Sahab wanted to give me a break ,but I refused those offers due to my hard core commitements to dance.Umrao Jaan firstly came to me but I said no since I wanted to be a great dancer of that era.

So after acheving your dance careers,in which films did you work so far ?

Ans. I did "Phir Wo Taalash" in DD National and this was directed by Tanweer Sahab who gave me Best Actress awards also.My character name

Neelima Azeem a trained Kathak Dancer and Actress who has got Indira Gandhi Awards for her contribution to Indian dance format and mother of famous Bollywood Actor Shahid Kapoor

MD.Iqbal Ahmad ! Film PRO
Andheri (W),Mumbai
Mob: +91 7738769346
Email: iqmumbai4u@gmail.com

Sahnaj became famous those days.After this I also worked in "Noore Nazar" with Gogga Kapoor,Karamyodha with Raaj Babbar,Dimple Kapadia.I also worked in Mahesh Bhatt film Sadak opposite Dipak Tijori etc.

Do you feel sorry not to accept nice offers in your earlier stage?

Ans. I would not comment like other people that I don't feel sorry,yes I think sometimes that I could accpet those offers.But,in second condition I think that if I would have accpted those films then may be I could not achieve in dance what I have now.Anyway I feel great to say that I am a Kathakkali Dancer.

Do you have any idea to adopt fully Kathak Dance in film?

Ans. I have great dream to adopt Kathak Dance in films.Realy it can be shown very beautifully on silver screen.Kathak has natural in its style it has Najakat,Shafakat,Ijjat and over all cultural oreinted.Like other fomat of dance it can be learnt from Pandit Birju Maharaj,who has given its identity in all over the world.This is why now Kathakakli is globally demanded.

What do you think about your son Shahid Kapoor who is a great actor an dancer?

Ans. I did a lot for my son Shahid Kapoor as a mother.He traveled all over the world with me at the age of 6yrs this is why he is a good dancer.Dancing is in his gene as he was brought up in such a film where his parents were good in both dancing and acting.This is the reason also he played different kinds f characters in films like Charley in Kaminey,Innocent boy in Jab We Met.I feel proud of my son Shahid Kapoor and wish his upcoming "Haider" will be a great hit as he did best in this film.

We heard that your younger son Ishaan Kapoor is also going to debut in film.

Ans. Sorry I cant disclose right now untill it comes on the floor.But,it is true he is getting many offers from the big names of the Industry.

What is your opinion about 100cr clubs?

Ans. In the recent competion of filmmaking and the starting of coroprate culture in Industry,everyone wants to gain fame and money due to this this 100cr clubs terms orginated .But, I think that story must be told with its goal instead of compromising with the other factors.Everyone wants to make money in short periods and according to me corporates are vannishing the creative freedom of a Director.This is pathetic that someone is from an IT Industry and start making Hindi films and appointed as a CEO lable positionin Industry without any experinces and knowledge.I love arts not money making films.

What's next ?

Ans. Many offers are coming to me but I am still thinking about that.I am in close to a Hindi Egypt film "Love in Cairo" which is the Joint Venture of Producer Javed Rahman Khan and Egypt filmakers.It is a love story filmm and where I will play a great role in it which will start shooting in in the month of October.

अनुवादक - चित्रा मुद्गल

बातचीत

चित्रा मुद्गल हिन्दी की जानी-मानी साहित्यकार है। साहित्य सृजन के साथ-साथ उन्होंने कई अनुवाद भी किए है। चित्रा जी से उनके अनुवादक व्यक्तित्व पर कुलदीप कुमार पाण्डेय की बातचीत-

प्रश्न -1 आपने सर्वप्रथम अनुवाद कब और क्यों किया?

उत्तर - मैंने सर्वप्रथम अनुवाद जीविकोपार्जन के लिए किया। भारती तथा गावस्कर की आत्मकथा का मराठी से हिंदी अनुवाद किया, जिससे कुल 1800 रुपए मिले। मैं मराठी जानने के कारण ही अनुवाद कर पाई। साथ ही आस-पास के वातावरण से भी सहायता मिली। मेरा बचपन कानपुर में बीता तथा मीडिल क्लास से मुंबई आ गई, यहाँ मैंने गुजराती भी पढ़ी इसलिए मैं एक साथ मराठी, हिंदी, गुजराती तथा अंग्रेजी जान पाई। अनुवाद को कैरियर बना सकूँ, ऐसी दिशा मुझे नहीं दिखाई गई। मुझे शौक नहीं था अनुवाद करने का, लेकिन पैसे अच्छे मिले इसलिए अनुवाद किया। अब तो अनुवाद के लिए कई कार्यशालाएँ होती है। तकनीकें सिखाई जाती है। कुल मिलाकर मैंने अनुवाद की शुरूआत जीविकोपार्जन के लिए किया। मेरी इसमें दिलचस्पी बढ़ने लगी। बाद में कमलेश्वरजी ने मुझे अनुवाद संबंधी बहुत से काम दिए।

प्रश्न-2 एक अनुवादक सिद्धांतों में बंधकर कार्य करता है या छूट लेता है। आप इसके किस पक्ष से सहमत है?

उत्तर- सिद्धांतों से हम न तो छूट ले सकते हैं न उसमें पूरी तरह बंधकर कार्य करते है। मूल पाठ की क्या दृष्टि हैं? उसका भाषा व्यवहार कैसा है? हमें यह देखना होता है। जैसे प्रेमचंद का भाषा व्यवहार अलग है, निर्मल वर्मा का भाषा का व्यवहार अलग है, अज्ञेय का भाषा व्यवहार अलग है। मूल पाठ का प्रवेश क्या है? उसका मर्म क्या है? तो यहाँ पर मूल पाठ का भावानुवाद होना चाहिए। मैंने शब्दानुवाद को महत्व नहीं दिया है। यदि हम वाक्य विन्यास और मर्म को ध्यान में रखकर अनुवाद करते हैं तो अनुवाद सिद्धांत स्वयं ही उसमें शामिल हो जाते है।

प्रश्न-3 आपने बड़ी-बड़ी साहित्यिक रचनाएँ की है। साहित्य को सृजन की कोटि में रखा जाता है। जब हम हमारे मन में आए भावों को साहित्य का रूप देते हैं तब क्या यह साहित्य सृजन स्वयं में एक अनुवाद कार्य माना जा सकता है?

उत्तर- नहीं, 'साहित्य सृजन' अनुवाद नहीं है। सृजन का अर्थ होता है New Creation, नई सृष्टि करना और साहित्य में भी भावों की नयी सृष्टि होती है। वहाँ भावों का अनुवाद नहीं होता है। सृजनात्मक को हम अनुवादात्मकता के रूप में नहीं देख सकते है। साहित्य सृजन है और सृजन अनुवाद नहीं होता है। जो सृजित होता है हम उसका अनुवाद करते है।

प्रश्न-4 आपकी दृष्टि में अनुवाद क्या है?

उत्तर - आज के समय में अनुवाद रोजगार का महत्वपूर्ण साधन है। आधुनिक समय में जब सब कुछ बड़ी तेजी से बदल रहा है। बाजारवाद में अनुवाद एक सशक्त रोजगार का साधन है, ज्ञान का साधन है। यही नहीं अनुवाद वैश्वीकरण के इस युग में मैत्री का हाथ है। यह एक सांस्कृतिक सेतु है।

सृजनात्मक को हम अनुवादात्मकता के रूप में नहीं देख सकते है। साहित्य सृजन है और सृजन अनुवाद नहीं होता है। जो सृजित होता है हम उसका अनुवाद करते है।

कुलदीप कुमार पाण्डेय

+91 9130787502

प्रश्न-5 क्या आज के समय में अनुवाद कार्य करने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है?

उत्तर- हाँ बिल्कुल, समय बदल रहा है। अनुवाद कार्य रोजगार तथा प्रौद्योगिकी से जुड़ गया है। इसलिए उसका प्रशिक्षण आवश्यक है। आज आकाशवाणी, दूरदर्शन, दूतावास, बैंक हर जगह अनुवादक की आवश्यकता है। विभिन्न क्षेत्रों की भाषा-शैली अलग-अलग होती है तथा बिना प्रशिक्षण अनुवाद में कई त्रुटियाँ हो सकती है। इसलिए तकनीकी अनुवाद बिना प्रशिक्षण के विश्वसनीय नहीं होता है। इसलिए अनुवाद डिप्लोमा, डिग्री आदि स्तर पर पढ़ाया जाने लगा है। आज सभी जगह अनुवाद के पाठ्यक्रम तैयार हो रहे है।

प्रश्न-6 अनुवाद में मूल भाव की परिवेशगत विशेषताएँ कहीं-न-कहीं धूमिल हो जाती है? आपका क्या मानना है?

उत्तर - मैं शब्दानुवाद को महत्व नहीं देती, भावानुवाद को महत्व देती हूँ। हर शब्द की अर्थ छवि अलग होती है। भाषा व्यवहार अलग होता है। कहन का तरीका अलग होता है इसलिए भाव का ही अनुवाद होना चाहिए। शब्दानुवाद में भाव नष्ट हो जाता है। अत: जब हम भावानुवाद करते है तो मूल भाव की परिवेशगत विशेषताएँ बरकरार रहती है।

प्रश्न-7 बदलते समय में आज के युवा अनुवादकों को आप क्या संदेश देना चाहेंगी?

उत्तर- युवा अनुवादकों को मैं यहीं कहना चाहूँगी कि अनुवाद की तकनीक, उसकी पद्धति को जाने तथा कैरियर के रूप में अनुवाद कार्य में रूचि रखे। भाषा व्यवहार तथा मूल लेखन की विशेषताओं पर ध्यान दें। अनुवाद पुनर्सृजन कहलाता है। मैं लेखक की दृष्टि से अनुवादक को बहुत महत्व देती हूँ। आज लेखक अनुवादकों के पीछे पड़े रहते हैं। अनुवाद कार्य को प्रेरणा देने के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार भी अनुवादकों को दिया जाने लगा है। मूल पाठ के संपूर्ण परिवेश को पकड़ने की क्षमता अनुवादक में होनी चाहिए।

हिंदी का ऐतिहासिक और वर्तमान स्वरूप

भाषा

वैदिक भाषा और उसके बाद विकसित संस्कृत या पाणिनीय संस्कृत आज से कम से कम 6000 वर्ष पूर्व जन्म ले चुकी थी। यह भाषा ही साहित्यिक और लौकिक धाराओं में बहती हुई आज भी भारतवर्ष में विद्यमान हैं।

अवधेश्वरी भगत (शोधार्थी)
इतिहास विभाग
शासकीय दू.ब.म.स्ना. (स्वशासी)
महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

किसी भी समाज के सभी वर्गों के सदस्यों द्वारा उच्चरित अवयवों से निर्मित भाषा सामूहिक रूप से नदी की तरह पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाहित होती है। अतः यह ज्यों-ज्यों आगे बढती है त्यों-त्यों इसके प्रवाह में सरलता और सहजता आती रहती है। इस परिवर्तन को विकास कहें या विकार, पर यह भाषा की प्रकृति है।

हिंदी शब्द फारसी भाषा का माना जाता है, जिसका अर्थ है- भारतीय। संस्कृत से फारसी में अनूदित ‘पंचतंत्र’ की भूमिका में ईरान के बादशाह नौशेखाँ के मंत्री बुजर्च मिहर ने यह लिखा है कि ‘यह अनुवाद जबान-ए-हिंदी से किया गया है’। यहां पर जवाब-ए-हिंदी का अर्थ भारतीय भाषा संस्कृत से है। वैदिक भाषा और उसके बाद विकसित संस्कृत या पाणिनीय संस्कृत आज से कम से कम 6000 वर्ष पूर्व जन्म ले चुकी थी। यह भाषा ही साहित्यिक और लौकिक धाराओं में बहती हुई आज भी भारतवर्ष में विद्यमान हैं। इसका लौकिक रूप आज हिंदी बन गया है, पर साहित्यिक रूप युगों के सागर पर तैरता हुआ बहुत कुछ अपने पुराने स्वरूप में ही वर्तमान है। वर्तमान हिंदी का विकास प्राचीन बोलचाल की संस्कृत भाषा से हुआ है। संस्कृत हिंदी का पूर्वज है और हिंदी संस्कृत की गोत्रजा। परंतु दोनों भाषाओं के बीच काल का व्यवधान बहुत लंबा हो चुका है। संस्कृत का काल 500 ईसा पूर्व तक माना जाता है। उसके बाद अगले 500 वर्ष में भाषा ने प्रथम प्राकृत या पालि का रूप लिया, जो अगले 500 वर्ष में और अधिक बदलकर द्वितीय प्राकृत रूप में आ गया। ई. 500 से 1000 तक भाषा में जो परिवर्तन होते रहें, उन्होंने उसे अपभ्रंश का नाम दिलाया। ई. 1000 के बाद से आधुनिक हिंदी का रूप-विकास होने लगा। भाषा के विकास क्रम को निम्न कालों में विभक्त किया गया -

- 2000 ई.पू. से 500 ई.पू. तक - इस काल में दो भाषाओं की गणना की जाती है। पहली वैदिक संस्कृत, जिसे प्राचीन संस्कृत, छान्दस अथवा वैदिकी नाम से भी इंगित किया जाता है। यह चारो वेदों, ब्राम्हण ग्रंथों, आरण्यको एवं उपनिषदों की भाषा है। दूसरी लौकिक संस्कृत, जो वैदिक संस्कृत के परिवर्तित रूपों से ही विकसित हुई।
- 500 ई.पू. से 1000 ई. तक - 500 ई.पू. से सन् के आरंभ तक के समय में महापुरूष बुद्ध और बौद्ध धर्म संबंधी साहित्य उपलब्ध होता है। कुछ विद्वान पालि और मागधी को एक ही भाषा मानते रहें है, पर वास्तविकता यह है कि पालि का क्षेत्र मागधी के क्षेत्र से विस्तृत था और पालि को प्रभावित करने वाली भाषाओं में मागधी का विशेष योगदान रहा।

ईसवी सन् के प्रारंभ से 500 ई. तक के समय में भाषाओं का विशेष विकास हुआ, जिनमें पांच प्रमुख है। पहली शौरसेनी प्राकृत जो शूरसेन प्रदेश (मथुरा) की भाषा थी। इसमें पालि भाषा के समान ध्वनियां प्रचलित थी। दूसरी मागधी प्राकृत, जो अवध से लेकर बंगाल तक बोली जाती थी। इसके स्वर पालि के समान है, पर व्यंजन में थोड़ा अंतर है। तीसरी अर्ध मागधी प्राकृत, जो मगध के पश्चिम और शूरसेन प्रदेश के पूर्वी भाग की भाषा थी। ध्वनियों की दृष्टि से इसने प्रायः मागधी और शौरसेनी का अनुकरण किया। चौथी महाराष्ट्री प्राकृत, जो महाराष्ट्र प्रदेश में प्रयुक्त होती थी। पांचवी पैशाची प्राकृत, जिसका प्रयोग पिशाच प्रदेश में (दक्षिण-पश्चिमी पंजाब की ओर) होता है। इसमें संयुक्त व्यंजनों को सस्वर करके बोला जाता है, जैसे - स्नान को सनान।

- 500 ई. से 1000 ई. तक के समय को अपभ्रंश काल भी कहते हैं। इस काल में प्रचलित अपभ्रंश भाषाओं की सूची विस्तृत है, जिनमें से मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्र, पैशाची और ब्राचड़ प्रधान है। इसमें मागधी से असमिया, उड़िया, बंगला, बिहारी;

अर्धमागधी से पूर्वी हिंदी; शौरसेनी से पश्चिमी हिंदी, पहाड़ी, राजस्थानी और गुजराती; महाराष्ट्री से मराठी; पैशाची से पंजाबी और लहंदा तथा ब्रांचड़ से सिंधी भाषाओं का विकास माना जाता है।

- 1000 ई. से 1500 ई. तक - धीरे-धीरे अपभ्रंशों के व्याकरणिक रूप लुप्त और हिंदी के नए रूप विकसित होते रहे। कालान्तर तक हिंदी की स्वतंत्र रूप रचना स्पष्ट हो गई। इस काल के साहित्यकारों में, गोरखनाथ, अमीर खुसरों, चन्दबरदाई, नरपति नाल्ह, विद्यापति, कबीर, गेसुदराज वन्दानयाज के नाम उल्लेखनीय है।
- 1500 ई. से 1800 ई. तक - इस काल में हिंदी अपभ्रंश के रूप में मुक्त हो गई थी। उसकी कई बोलियां अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण सशक्त हो चुकी थी, जिन्हें साहित्यकारों ने सहर्ष अपनाया। ब्रज, अवधी, मौथिली, उर्दू और खड़ी बोली में सम्यक रूप से साहित्य रचना हुई। इस काल में साहित्यकारों में सूर, तुलसी, केशव, मीरा, भूषण, रहीम, नानक, बुरहानुद्दीन, वली, सौदा, मीर, रामप्रसाद निरंजनी व दौलतराम प्रमुख है।
- 1800 ई. से आधुनिक काल के हिंदी की बोलियों का व्याकरणिक अस्तित्व सुस्पष्ट हो गया। खड़ी बोली ने ब्रज और अवधि से आगे बढ़कर विशेष उन्नति की। उसके लेखन में विराम चिन्हों के प्रयोग से अनुशासन बढ़ा और वाक्य रचना पर अंग्रेजी तथा फरसी शैलियों के प्रभाव से निखार आया। इस काल के साहित्यकारों में हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, दिनकर, बच्चन आदि के नामों की लम्बी सूची बनाई जा सकती है।

डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल के मतानुसार, ''भारत की मौलिक एकता बनाएं रखने वाली जो सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हिंदी को प्राप्त थी वह उर्दू को नहीं थी, अतः उर्दू शिक्षित मुसलमानों का ही पलड़ा पकड़ कर चलती रही। सामान्य मुस्लिम जनता ने भी दुख-सुख में साथ देने वाले अपने पड़ोसी भाईयों की बोली में साथ दिया और इस प्रकार हिंदी की व्यापकता बढ़ती गई। उर्दू को पीछे घसीटने वाली उसकी अरबी-फारसी लिपि है, जो भारतीय भाषाओं के लिए पूर्ण अवैज्ञानिक थी। फलतः खड़ी बोली हिंदी रूप के वहन करने में वह असमर्थ रही। यदि उर्दू ने देवनागरी लिपि का जामा पहना होता तो निःसंदेह राष्ट्रभाषा हिंदी का जो रूप आज है, वह उससे कुछ भिन्न होता। इस प्रकार हिंदी अपने मूल अर्थ के निकट पहुंचती गई और अंत में नियमित रूप से 1949 ई. में गणतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा घोषित कर दी गई।''

हिंदी के वर्तमान रूप में विकास का एक कारण यह भी रहा कि भारत में कई भाषाए बोलियां प्रस्तुत होती है। उनके बोलने वाले जब मातृभाषा-भाषियों से दूर शहरों से दूर नौकरी करने लगे जिसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार टूटकर यत्र तत्र बसने लगे; तब पारस्परिक बोलचाल और सामाजिक कार्यक्रमों के लिए शिक्षा व साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित हिंदी ही काम आई। ऐसे परिवारों की अगली पीढ़ियों में भी हिंदी को केवल अपनाया ही नहीं बल्कि समृद्ध भी किया। यही कारण है कि आज खड़ी बोली के जिस परिनिष्ठित रूप का शिक्षा, साहित्य, समाचार पत्र, आकाशवाणी या फिल्म के क्षेत्र में प्रयोग होता है, वह किसी स्थान या क्षेत्र विशेष की नहीं, बल्कि सारे भारत की भाषा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत के विभिन्न प्रदेशों तथा क्षेत्रों की जनता अपनी बोलचाल में अब भी स्थानीय भाषाओं का प्रयोग करती है, लेकिन उनके व्यापक समाज की भाषा हिंदी है।

आज का हिंदी गद्य केवल उपन्यास, नाटक, एकांकी, ललित निबंध, आलोचना आदि की भाषा नहीं है, वरन् बड़े पैमाने पर वह ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में सफलतापूर्वक व्यवहृत हो रहा है। इतिहास, भूगोल, दर्शन, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, समाजशास्त्र, पुरातत्व, मनोविज्ञान, रसायन, भौतिकी, जीवविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, विभिन्न ललित कलाओं आदि के लिए इसका सहज प्रयोग हो रहा है। इसी रूप में हिंदी संपर्क भाषा है और सही अर्थ में राष्ट्रभाषा भी।

मारुति कार

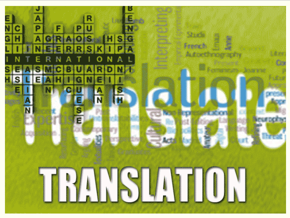

अनूदित

मूल गुजराती कहानी : डॉ.कन्हैयालाल भट्ट

हिंदी अनुवाद लतिका चावड़ा

मारुति कार दरवाज़े पर आकर खड़ी हुई, जनकराय आश्चर्य में पड़ गए। जिस घर के द्वार पर कभी सायकल की घंटी तक बज नहीं सकी उस घर कर द्वार पर मारुति कार?

उन्होंने चारपाई पर बैठे-बैठे झट से धोती ठीक की। कंधे से गमछा उतारकर बगल में रखा। खाखी बीड़ी बुझा दी। झट से एक नज़र सामने वाले आईने पर डाली, चेहरा वृद्ध लगा। लेकिन भरावदार होने पर मन ही मन खुश हुए, पास में रखा चश्मा उठाकर आँखों पर लगाया। आँखें जगमगा उठीं। दृष्टि घर के दरवाज़े से बाहर मारुति कार के दरवाज़े पर पहुँची।

जशोदा ने अपनी बावन वर्ष की ज़िन्दगी में कभी असली मारुति कार नहीं देखी थी। एक बार उसे सपना आया था कि वह और उसके पति जनकराय दोनों मारुति कार में कहीं दूर-दूर जा रहे हैं। सुबह होते ही वो स्वप्न जशोदा ने अपने पति को बताया। उस सुबह पति पत्नी दोनों ने ही मानो काल्पनिक सुखों के घोड़ों की रेस लगा दी थी।

उसके दो दिन बाद ही जनकराय के सीने में दर्द उठा था, जशोदा को उनके सीने का दर्द याद आ गया। तवे पर भाखरी जली। धुंआ निकला, बास आई, भाखरी* पर काले दाग पड़ गए। जशोदा ने झटपट दोनों हाथों से भाखरी घुमाई।

जशोदा को खुद की ज़िन्दगी भी जली हुई भाखरी सी लगी। एक गहरी बद्दुआ मुँह से निकल गई।

आँटेवाले हाथ झटके। मोटर का आवाज सुनकर थोड़ी सीधी हुई तब जशोदा ने खिड़की के बाहर नज़र डाली तो एक झटका-सा महसूस किया।

उसके घर के दरवाज़े पर मोटर आई ?

पलभर के लिए तो जशोदा को अपना स्वप्न सच्चा लगा। उसे लगा शायद ये मोटर उसकी अपनी ही हो तो ?

नहीं, नहीं, वह तो खुद जानती थी कि उसके पति एक फैक्ट्री में सामान्य क्लर्क की नौकरी करते थे, इसलिए सायकल भी न ले सके थे। तीन-तीन बेटियों के विवाह का खर्च और ब्याज पर उठाए पैसों का हर महीने लगने वाले ब्याज के कारण मुश्किल से गुजारा चलता था।

जशोदा ने खिड़की के बाहर देखा और पटे पर बैठ गई। बाजरे के आँटे में पानी उंडेला। दोनों से आँटा गूँथा, मसले हुए आँटे के लोइयों को हाथ में लेकर बेलना शुरू किया। आँटे की गोल लोई फैलती चली गई, बेलने की वह आवाजें तालबद्ध होती गईं... टप... टप... टप...

जनकराय को जशोदा के हाथों की बनी भाखरी की लयबद्ध टप-टप बहुत अच्छी लगती। 35-35 वर्ष के प्रसन्न दाम्पत्य जीवन का सुमधुर संगीत इन भाखरी के और हाथों की टप-टप की आवाज से प्रकट होने का अहसास होता।

उन्होंने एक नज़र रसोईघर की ओर दौड़ाई। रसोईघर के दरवाज़े से बाहर निकलते धुएँ को स्पर्श करके वापस आई।

धुआँ, धुआँ.......;

यह कंबख्त धुआँ जशोदा की रोज़ मुसीबत करता है। उसकी सुन्दर आँखों के आसपास इस धुएँ ने गहरे रंग के घेरे रच दिए थे, लेकिन क्या करे ?

परिस्थिति के रचे गहरे घेरों से खुद भी बाहर नहीं निकल पा रहा था। घर में अशोक स्टव था पर केरोसीन मिलता नहीं, मिलता तो काले बाज़ार से तीन चार गुना भाव पर लेना महंगा पड़ता। कई बरस बीत गए उन्होंने केरोसीन देखे हुए। घर में चूल्हा और अंगीठी थे। कोयले और उपले भी बनाती और कुछ पाँच-दस रूपए बचा लिया करती।

लतिका चावड़ा
पी-एच.डी. शोधार्थी
अनुवाद अध्ययन विभाग
म.गां. अं.हिं.वि. वर्धा, महाराष्ट्र

---

* गुजरात में मुख्य रूप से खाई जाने वाली बाजरे की मोटी रोटी

जशोदा ने सिकी हुई भाखरी को उतारकर बेली हुई भाखरी को तवे पर डाला। पास पड़ी पानी की तश्तरी में हाथ साफ़ किये। किनारे पर पड़े लकड़ी के दो-चार टुकड़े उठाकर चूल्हे में डाले। लगातार आठ-दस फूँक मारी। आँखों से आँसू निकल आए। विवाह उपरान्त ज़िन्दगी के 35 बरस यही धुआँ निकालने में चले गए ऐसा उसे लगा। उसमें बेचारे पति जनकराय का क्या दोष ? जो भी दोष हो वो तो भाग्य का है। नसीब का है। बीते जन्मों के कर्मों का है। जशोदा को 'गीता' का एक श्लोक याद आया।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमां ते संग अस्तु अकर्मणि। । "

यह श्लोक उसके पति को अत्यंत प्रिय था। हररोज़ सुबह स्नान करते वक्त, अचूक जनकराय के मुख से यह श्लोक सुनने को मिलता।

अपने विवाह के दूसरे ही दिन सुबह सुबह जब जनकराय ने स्नान करते वक्त यह श्लोक गाया तब जशोदा ने उस श्लोक का अर्थ पूछा था और जवाब में जनकराय ने सरस्वति चन्द्र जैसा लम्बा व्याख्यान दे दिया था।

तवे पर जशोदा ने भाखरी घुमाई। जशोदा को अपने विवाह की याद आई। पहली मधुरजनी याद आई। बावन बरस के वृद्ध चेहरे पर शर्म के दो छोर फूट पड़े। आँखों से टपकती बूंदों को साड़ी के आँचल से धीरे-से जशोदा ने पोंछ लिया।

खारे पानी की दो-चार बूँदें नीचे टपकीं। तभी ऊपर से चूल्हे की राख से धुआँ झगड़ पड़ा।

35 बरस पहले के जवान जनकराय जशोदा के मानसपटल पर उभर आए। 'केसरी रंग का अधोवस्त्र, उसपर सफ़ेद सिल्क का कुर्ता, तेल डालकर बनाए हुए बाल, माथे पर लाल रंग का तिलक, उसपर केसरी साफ़ा, पैरों में राजस्थानी मोजड़ी, उस वक्त भी जशोदा को जनकराय पुरानी फिल्मों के हीरो की तरह स्मार्ट लगते।

जशोदा ने भाखरी तवे से नीचे उतारी।

जनकराय को लगा यह मारुति उनकी खुद की ही हो तो ? जशोदा को उसमें बिठाकर चार-धाम की यात्रा कराने ले जाऊँगा। परन्तु.... नहीं, नहीं इस तरह इच्छाओं को क्यों विस्तार देना चाहिए ? इच्छाएँ ही मानव को दुखी करती हैं। प्रसन्न मन में उद्वेग भर देती हैं। 'गीता' के 17वें अध्याय का एक श्लोक जनकराय को याद आ गया।

मन: प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रह:।
भावसंशुद्धिरित्येततपो मानसमुच्यते। ।

इतना होने पर भी जनकराय मन को काबू में न कर सके। हमारा बेटा जरूर एक दिन मारुति कार लाएगा और मेरी इच्छा पूरी करेगा। क्षण भर तो जनकराय को लगा की आँगन में खड़ी मारुति कार से उसका ही पुत्र तो नहीं उतरा ?

उत्सव।

तीन बेटियों के बाद की संतान, वह पुत्र 'उत्सव' था, उत्सव की परवरिश गरीबी में हुई। उसके कोई भी शौक पूरे न हो सके इस बात का रंज आज भी किसी अन्य पिता की तरह जनकराय को दुखी कर देता, कॉलेज की पढ़ाई भी खुद उत्सव बड़ी ही मुश्किल से पूरी कर पाया था, यह जनकराय जानते थे। अंग्रेज़ी माध्यम से ग्रेजुएट उत्सव उच्च अध्ययन भी न कर सका कि वह प्रोफ़ेसर बन सके। प्रोफ़ेसर बनकर मारुति कार लाने का सपना भी अब उत्सव पूरा नहीं कर पाएगा। जनकराय के मन में बड़ी भारी उदासी छा गई।

सारे विचारों कोई झटककर जनकराय ने अपनी दृष्टि दरवाज़े पर स्थिर की। शायद मोटर में उत्सव ही हो।

तभी दरवाज़े से उत्सव अंदर आया।

अरे बेटा उत्सव ! उस मोटर में तू आया ?

कौन-सी मोटर पिताजी ?

यही मारुति, जो दरवाज़े पर खड़ी है, वही ?

उत्सव ने दरवाज़े पर नज़र डाली, कोई मारुति नहीं थी।

वह समझ गया।

अरे बाबूजी, आपको कितनी बार कहा है कि आप, 'मोटर, मोटर' मत किया करो।
बंद करो अब मारुति का सपना देखना। ईश्वर ने हमारे नसीब में मारुति कार का सुख
नहीं लिखा होगा।

'पर बेटा, तू आया वह गाड़ी?'

'मैं पैदल चलकर ही आया हूँ और बाहर कोई गाड़ी नहीं खड़ी है। '

जैसे ही जशोदा रसोईघर से बाहर निकली, जनकराय बोल उठे,

'तूने बाहर मारुति कार देखी थी कि नहीं?'

'हाँ, बेटा उत्सव, गाड़ी तो मैंने भी देखी थी। किसकी थी वह ? तूने ली बेटा ? अच्छा हुआ। तेरे पिताजी का सपना कितने बरसों बाद पूरा होगा।

उत्सव हकबका गया। उसे डॉक्टर के बोल याद आ गए।

'यदि तेरे पिताजी का मानसिक भ्रम दूर नहीं हुआ तो उसका असर तुम्हारी माँ पर पड़ेगा और शायद उन्हें भी मानसिक रोग....'

'बेटा, हम सब गाड़ी में बैठकर.....'

नहीं माँ, वहाँ कोई गाड़ी नहीं है.... बाबूजी की तरह आप भी....

उत्सव आगे कुछ न कह सका। उसकी आँखें भीग आईं।

उत्सव।

पिछले कितने समय से चिंतातुर था।

उसके पिता जनकराय जो अपनी पूरी ज़िन्दगी में एक सायकल भी न ले पाए थे वे पिछले कई बरसों से मारुति कार का सपना संजोए जी रहे हैं। उत्सव को अच्छी तरह से याद था कि जब वह एम.एस.सी. में था, तब उसने पिताजी से मोटर लेने की बात छेड़ी थी और उसी समय 'माँ' ने पिताजी के सीने में दर्द होने की बात समझाई थी, तब से लेकर आज तक उसने कभी भी मोटर लेने की बात मुँह से नहीं निकाली थी। लेकिन मन के किसी कोने में उत्सव ने भी एक दिन मारुति कार लेने की इच्छा जगाए रखी थी और न जाने कैसे जब से जनकराय रिटायर्ड हुए हैं तभी से मारुति कार खरीदने की सोच रहे हैं। आज उन्हें रिटायर्ड हुए भी बरसों बीत गए। फैक्ट्री से छुट्टी पाई तब पी.एफ. और बीमा तथा थोड़े बहुत बचत के जो कुछ भी पैसे आए सारे बहनों के दहेज में चले गए, उत्सव यह अच्छी तरह जानता था।

पिछले 5-7 बरसों से रोज एकाध बार तो कनकराय को अपने घर के द्वार पर मारुति कार आकर खड़ी होती दिख ही जाती थी और उस मारुति को देखकर रोज़ जनकराय ठीक हो जाते। विचारों के चक्कर में पड़ जाते। आखिर में जशोदा को बुलाकर, पास बिठाकर दरवाज़े पर खड़ी मारुति कार बताया करते।

जशोदा भी बेचारी क्या करे ?

जिंदगी के इतने बरस गरीबी में निकाले थे और फिर भी यदि गरीबी घर की चौखट न छोड़ती हो, तो एकाध मारुति कार लेने का सुखद स्वप्न देख लेने की इच्छा को जशोदा कैसे रोक पाती ? फिर तो जनकराय रोज़ जशोदा को दरवाज़े पर खड़ी मारुति कार दिखाया करते। जशोदा रोज़ यूँ ही रोटी छोड़कर आ जाया करती। मोटर देखती, हँसती। दोनों पति-पत्नी चारपाई पर बैठकर मोटर लेकर कहाँ-कहाँ यात्रा करने जाएँगे उसकी चर्चा करते। तीनों बेटियों के घर जाकर उन्हें भी मोटर में बिठाकर घूमने ले जाने की बातें करते और मन ही मन अकल्प्य आनंद उठाते, और रसोईघर में रोटी जल जातती। अपने अम्मा-बाबूजी के इस मनोवैज्ञानिक रोजनिशी से उत्सव वाकिफ़ था।

रात हुई।

चूल्हा चौका निपटाकर जशोदा अपनी चारपाई पर जाकर लेट गई। दिन भर की थकान के चलते लस्त होने से चारपाई पर लंबे होते ही आँख लग गई।

निद्रादेवी ने जशोदा को अपने पासों में लपेट लिया परन्तु जनकराय दूसरी चारपाई पर बैठे-बैठे आँखें बंद कर अब भी विचारों में डूबे थे।

उत्सव।

वह भी अपनी चारपाई पर लेटा पड़ा था। उसे लगा यदि एकाध बार भी गाड़ी किराए से लेकर अपने माँ-बाप को चार-धाम की लंबी यात्रा करा दे तो, शायद उनकी लक्ष्य-प्राप्ति का यह सुखद अनुभव उन्हें उनके मानसिक चितभ्रम से मुक्ति दिला सके। लेकिन मारूति कार किराए की इतनी बड़ी रक़म वह अकेला किस प्रकार चुका पाएगा ?

अपनी आर्थिक स्थिति का अवलोकन करना उत्सव ने छोड़ दिया था। पिता की तरह खुद भी एक बहुत ही सामान्य फैक्ट्री में नौकरी करके मुश्किल से घर चलाता था।

उत्सव आज पूरी तरह से टूट चुका था।

उसने अपनी माँ-बाबूजी की चारपाई पर नजर दौड़ाई। दोनों शायद सो गए थे ऐसा लगा। 'क्या करना चाहिए?' अपनी फैक्ट्री में रोज़ नोटों की गड्डी गिनते सेठ के ऑफिस में डाका डालूं ? नहीं, नहीं इस बार तनख्वाह से थोड़ी लौटरी की टिकट ही ले लेता हूँ। शायद नसीब में मारुति कार-1000 हो और लौटरी लग गई तो ? नहीं, नहीं अब नसीब पर तो....

बैंक में चोरी करूँ ?

किसी का खून ? अपहरण, धोखाधड़ी....

विचारों का ढेर लग गया उत्सव के मन में। गाड़ी कैसे खरीदूं ? उत्सव को अपने माँ-बाप की इच्छा के स्वप्न का महत्व आज समझा। खुद भी रोज़ चार किलोमीटर चलकर फैक्ट्री जाता। गर्मियों की चिलचिलाती धूप, सर्दियों की कड़कड़ाती ठंडी या सावन की धुआँधार बारिश। जो भी हो तपना, ठिठुरना और भीगना उसके फ़र्ज़ में शामिल हो चुका था।

एकाध मारुति कार हो.. ड्राइवर हो....!!!!

फैक्ट्री में कार से नीचे उतरता उसका सेठ उत्सव को याद आया। बिना मारुति कार की जिन्दगी उत्सव को बेकार-सी लगी। डनलप की नरम-नरम सीट हो। अंदर के काँच से बाहर की सारी सृष्टि का दर्शन होता हो और हवा में सरसराते हुए किलोमीटर कटते चले जाएँ, दूर-दूर तक वृक्षों की हारमालाएँ दौड़ती चली जाएँ, दिन में सूरज और रात में चाँद भी अपनी मोटर के साथ-साथ दौड़ता हो।

कितना उत्तम सुख मिले ?

नहीं, नहीं, मोटर तो लेनी ही होगी।

उसे लगा इसी पल माँ बाबूजी को, जगाकर कह दे कि अब मैं, जो भी हो किसी भी तरह से मारुति कार लूँगा और सब यात्रा पर जाएँगे।

तमाम रात्रि उत्सव के मन में मोटर कार की घरघराहट कौंधती रही। आँखें घिर आईं चारों ओर असंख्य मोटरकारों के बीच उसने स्वयं को उपस्थित पाया। सुबह-सुबह पहले प्रहर में आँखें लगीं।

सुबह हुई।

उत्सव अभी उठा नहीं था।

जनकराय ने जशोदा से पूछा, 'उत्सव अभी तक उठा क्यों नहीं ? उसकी तबियत तो.... ?'

तभी उत्सव ने करवट बदली, धीरे-धीरे आँखें खोलीं। उसने चारों तरफ देखा। माँ-बाबूजी को देख मुस्कुराया। घर की चारों दीवारों की ओर देखा। उसे थोड़ा संदेह हुआ। सामने टँगी घड़ी की ओर निगाह की, अरे दस बज गए हैं ?

ओह!

तभी मारुति आकर घर के दरवाज़े पर खड़ी हुई।

जनकराय, जशोदा और उत्सव की नजरें दरवाज़े आई मारुति कार के दरवाज़े पर टिक गईं।

दरवाज़ा खुला।

'सफ़ेद कलर के सूट और गॉगल्स पहनकर उत्सव मारुति कार से नीचे उतरा।'

कैमरा लेंस : प्रारंभिक परिचय एवं प्रयोग

अभ्यास

कैमरा लेंसों का न केवल फिल्म या विडियो के लुक पर बल्कि मूड जिसे हम स्थापित करना चाहते हैं पर भी बहुत ही सार्थक प्रभाव पड़ता है। यदि आप अपने कैमरे के साथ दिये गए लेंस को प्रयोग करते हैं तो निश्चित ही आपको विजुयल्स के साथ समझौता करना होगा। ऐसा इसीलिए है क्योंकि लेंस डेप्थ, पोजीशनिंग और ओब्जेक्ट प्रिओरिटी को स्थापित करने में मदद करते हैं।

लेंस के कई प्रकार हैं जिनका प्रयोग हम अपनी फिल्मों, डाक्यूमेंटरी, शॉर्ट्स और म्यूजिक विडियो में कर सकते हैं। हम यहाँ पर विषय को सरल करने के लिए तीन सबसे साधारणतया प्रयुक्त होने वाले लेंसों की चर्चा करेंगे। यदि आप अपने किट में इन तीन लेंसों को शामिल करते हैं तो सीन को कंपोज करते वक्त आपको बहुत सी सहूलियतें और विजुयल फ्लेक्सिबिलिटी मिलेगी।
तीन लेंसेज जिनकी मैं अनुशंशा करूंगा वे हैं :-

इस बार अभ्यास स्तंभ में बेसिक लेंस पर चर्चा की जा रही हैं। आशा है पाठकों और कैमरा प्रेमियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

1

2

3

प्रवीण सिंह चौहान
+91 9763706428
praveenkrrish66@gmail.com

1. **रेगुलर लेंस : यह 50 mm स्टिल कैमरा लेंस है**
2. **सामान्य वाइड एंगेल लेंस : 24-35 mm स्टिल कैमरा लेंस**
3. **सामान्य ज़ूम लेंस : 80-200 mm स्टिल कैमरा लेंस**

सामान्य नियमों के अनुसार 50 mm से नीचे जाने पर लेंस वाइड एंगेल होते जाते हैं। 17 mm या 14 mm एक्सट्रीम वाइड एंगेल लेंस होंगे। नंबर जितना छोटा होता जाएगा वाइड एंगेल लेंस उतने ज्यादा वाइड होते जायेंगे। वास्तव में 14 mm लेंस को फिश आई लेंस के रूप समझा जाएगा। 50 mm से ऊपर जाने पर लेंस टेलीफोटो लेंस होता जाता है। नंबर जितना बड़ा होता जाएगा टेलेफोटो लेंस की क्षमता उतनी बढ़ती जाएगी।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य लेंस भी हैं जैसे कि एक्सट्रीम वाइड एंगेल लेंस या एक्सट्रीम टेलीफोटो लेंस, लेकिन यदि आप अभी लेंस किट बनाने की शुरुआत ही कर रहे हैं तो ये लेंस दिन-प्रतिदिन की शूटिंग हेतु ज्यादा प्रयोगिक नहीं हैं। भविष्य में हो सकता है आप इनसे प्रयोग करें परंतु फ़िलहाल में ये इतने आवश्यक नहीं हैं।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात जो कि समझ लेनी आवश्यक है वो है – लेंस की 'स्पीड'। लो लाइट की परिस्थितियों में आने वाली परेशानी, चुनौती से बचने के लिए 'फास्ट लेंस' का प्रयोग करना चाहिए। अधिकतम अपरचर ओपेनिंग के साथ छोटे नंबर वाले ऐसे कई लेंस हैं। उदाहरण के लिए किसी लेंस के रिंग पर देखें तो निम्न नंबरों का क्रम लिखा होता है –

1.8, 2.8, 4, 5.6, 8, 11, 16

अथवा

4, 5.6, 8, 11, 16, 22, 32

लेंस पर नंबर की रेंज जितनी कम होगी उतनी ही ज्यादा अपरचर की ओपेनिंग संभव होगी। सरल भाषा में कहा जाए तो, जितना कम नंबर होगा उतना ज्यादा लेंस ओपेन जिससे ज्यादा से ज्यादा लाइट उससे हो कर अंदर जाती है।

उपरोक्त उदाहरण में 1.8 से शुरू होने वाला लेंस, 4 से शुरू होने वाले लेंस से ज्यादा फास्ट है। लेंस खरीदते वक्त आप देखेंगे कि उस पर निम्न प्रकार से क्लासिफिकेशन लिखा होता है :

50 mm f/1.8

इसका मतलब होता है कि वह एक 50 mm का 1.8 अपरचर ओपेनिंग के साथ फास्ट स्पीड का लेंस है।

तो अब ये सारी चीजें किस प्रकार से आपकी विडियो फुटेज को प्रभावित करती हैं ?
प्रारंभिक रूप से, विभिन्न प्रकार के लेंस डेप्थ, डिस्टन्स और स्पेस को बहुत अलग तरह से कम्युनिकेट करते हैं। एक वाइड एंगेल लेंस डेप्थ और ओब्जेक्ट्स के बीच की दूरी को बढ़ा देता है और ज्यादा से ज्यादा आसपास के वातावरण को शामिल करता है। दूसरी तरफ ज़ूम लेंस ओब्जेक्ट्स को आपस मे वास्तव मे जितने पास होते हैं उसकी अपेक्षा बहुत पास दिखाता है और ये लेंस आस-पास के वातावरण को बहुत कम शामिल करता है। 50 mm के सामान्य लेंस का आशय यह है कि ये सामान्य रूप से मानवीय आँखों द्वारा देखे जाने वाले इमेज के समकक्ष शूट करता है।

आइये हम प्रक्टिकल उदाहरण द्वारा देखते हैं कि किस तरह लेंस आपके फुटेज को प्रभावित करता है :

Example: Wide Angle Lens (24mm f/2.8)

Example: Normal Lens (50mm f/1.4)

Example: Telephoto Lens (85-200mm f/4)

तीनों इमेज मे दिख रहे अंतर पर गौर करिए। तीनों में कैमरा की पोजीशन और सेटिंग्स समान हैं। कुछ भी नहीं बदला गया है केवल लेंस को छोड़कर। प्रत्येक इमेज में दिखने वाली लैंडस्केप की मात्रा पर गौर करिए। वाइड एंगेल लेंस वर्टिकली और हॉरिजॉन्टली दोनों तरह से सबसे ज्यादा इन्फोर्मेशन शामिल करती है और ज़ूम लेंस सबसे कम मात्रा में। इस पर भी गौर करना आवशयक है कि ज़ूम लेंस इमेज में ओब्जेक्ट्स को एक दूसरे के नजदीक कर देती है। वाइड एंगेल लेंस आपके कैरेक्टर्स को दूर और ठंडा दिखाता है जबकि ज़ूम लेंस कैरेक्टर्स को पास और सक्रिय दिखाता है। वाइड एंगेल लेंस उस वक्त उपयोगी होते हैं जब हम छोटे स्पेस में शूटिंग करते हैं क्योंकि वाइड एंगेल ज्यादा से ज्यादा वातावरण को दिखाता है जो कि सामान्य लेंस से संभव नहीं हो पाता।

लेंस का चुनाव लोकेशन और सीन के मूड के अनुसार किया जाता है। लेंस इमेज पर नाटकीय प्रभाव पैदा करते हैं।

http://www.transframe.in

Email us

contact@transframe.in

transframemagazine@gmail.com